सरल-साहित्य-सङ्कलनम्

उत्तरार्धम्

प्रकाशक

ओरिएण्टल बुक डिपो

१७०४, नई सड़क, दिल्ली ।

Sri Kanth Kaul

सरल-साहित्य-सङ्कलनम्
उत्तरार्धम्

लेखक तथा सम्पादक
प्रो० धर्मचन्द सन्त
बी. ए. (ग्रानर्ज), एम. ए. (सं० हि० राजनीति)

संस्कृत वा हिन्दी विभाग,
पंजाब यूनिवर्सिटी कैम्प कालेज, नई दिल्ली ।

प्रकाशक
ग्रोरिएण्टल बुक डिपो
१७०४, नई सड़क, दिल्ली ।

द्वितीय संस्करण } मूल्य १॥)

कुछ अपने शब्द

किसी देश की स्थिति को मापने का मापदंड उस देश की संस्कृति होती है और संस्कृति का गहरा सम्बन्ध उस देश की भाषा से होता है। भारत की संस्कृति का संसार में इतना उन्नत स्थान और सम्मान क्यों है ? इसका एकमात्र कारण इसकी भाषा संस्कृत है। हमारे ऋषि-महर्षियों, उपदेशकों और तत्त्व-वेत्ताओं ने इस देश को संस्कृत भाषा के द्वारा उन-उन तत्त्व-रत्नों की अमूल्य निधि दी है जिनके कारण इस अधोगति के समय में भी इसका मुख उज्ज्वल है और इसका स्थान संसार की अग्रसर जातियों में किसी से पीछे नहीं है।

संस्कृत को मृत भाषा कहा जाता है, क्योंकि वर्तमान काल में यह कहीं भी व्यवहृत नहीं होती। ऐसा होने पर भी असंख्य तथाकथित प्रचलित भाषायें इससे ही जीवन लेकर पनप रही हैं। भारत की तो समस्त भाषाओं का इसी के आधार पर निर्माण हुआ है क्योंकि इसके शब्द-भंडार में किसी भी विषय के दुरूह से दुरूह भावों को व्यक्त करने की क्षमता है। यही कारण है कि भारत के शासन-विधान में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का शब्द-भण्डार संस्कृत पर आधारित ही स्वीकृत हुआ है।

इधर बहुत देर से संस्कृत की ओर हम लोगों की उपेक्षा-सी रही है। कारण यह कि यहाँ की शिक्षा-प्रणाली में इसका स्थान इतना उन्नत नहीं रहा जितना होना चाहिए। यह हमारी भूल है। यहाँ की संस्कृति को जीवित रखने और राष्ट्र-भाषा हिन्दी को उन्नत और समृद्ध करने के लिए संस्कृत को

जीवित रखना प्रत्येक भारतीय का ध्येय होना चाहिए। वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी ही क्या, इस देश की सब भाषाओं का शब्द-भंडार संस्कृत पर ही आश्रित है। हिन्दी के तो शब्द-कोष में कम से कम सत्तर प्रतिशत शब्द संस्कृत के, कुछ तत्सम और कुछ तद्भव, मिलेंगे। इस दृष्टिकोण से सभी प्रान्तों में संस्कृत का स्थान पाठ्य-प्रणाली में अत्युच्च होना चाहिए।

कुछ इन उपरिलिखित कारणों से और कुछ अन्य कारणों से संस्कृत की पाठन-प्रणाली में आवश्यकता और अवसर के अनुसार वैसे संशोधन और परिष्कार नहीं किये गये जैसे दूसरी भाषित भाषाओं में किये गये हैं। इसका साहित्य सुकुमार छात्रों की रुचि और योग्यता के अनुसार बना कर उनके सामने नहीं रखा गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि संस्कृत के पाठन में अध्यापकों की और पढ़ने में छात्रों की रुचि नहीं रहती रही। आशा है अब, जब कि इसका स्थान पाठ्य-प्रणाली में उन्नत होगा, इस न्यूनता को आवश्यकता और समय का प्रभाव पूरा करेगा।

प्रस्तुत-संग्रह 'सरल-साहित्य-सङ्कलनम्' की सामग्री पंचतन्त्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर, शुक-सप्तति, पुरुष-परीक्षा, भोज-प्रबन्ध, द्वात्रिंशत्-पुत्तलिका, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, भास, चाणक्यनीति, बुद्ध-चरित, कामन्दकीय नीति-सार, दश-कुमारचरित—आदि से ली गई है। इस प्रकार यह छात्रोपयोगी संस्कृत-साहित्य का प्रतिनिधि-संग्रह है। इसमें रोचक-रोचक आख्यायिकायें और छात्रों के आचरण को उन्नत करने के सदुपदेश भी दिये हैं।

इस संग्रह के दो खंड हैं—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। दोनों

खंडों में गद्य-भाग भी है और पद्य-भाग भी। पूर्वार्ध में कुछ सरल सामग्री है, उत्तरार्ध में उससे कुछ उच्च स्तर की। इसी कारण पूर्वार्ध के पाठ कुछ छोटे और सरलतर हैं। पाठों के कलेवर भाषाविकास के सिद्धान्तों के अनुसार रचे गये हैं—अर्थात् सरल के पश्चात् सरलतर, सरलतर के पश्चात् कुछ कठिन और फिर कठिनतर विषय क्रमशः रखे गये हैं। इसी विचार से पहले तीन पाठों में सन्धियुक्त और समस्त शब्द नहीं दिये गये, क्योंकि सन्धि और समास कुछ जटिल विषय हैं, अतः उनके साथ ही पाठों को आरम्भ करना भाषा-विज्ञान के प्रतिकूल है। तीन पाठों के बाद सन्धियों और समासों का प्रयोग क्रमशः किया गया है और जहाँ कहीं भी किसी नई सन्धि या समास का प्रयोग हुआ है उसका नियम भी नीचे टिप्पणी में दे दिया है। इस विधि के अनुसार पाठक महोदय सन्धि और समासों पर विशेष ध्यान दे सकेंगे। सन्धि और समास संस्कृत भाषा के अत्युपयोगी और साथ ही कुछ कठिन भी अंग हैं। ये ही संस्कृतज्ञान में बड़ी बाधाओं में से हैं। इन बाधाओं को दूर करना इस प्रणाली का उद्देश्य है।

पुस्तक के कलेवर के बाद 'संस्कृत भाषा के मुख्य और विशेष अंग' इस शीर्षक का एक छोटा सा अध्याय दिया है। इसमें भी सन्धि और समासों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। अन्त में पुस्तकान्तर्गत पाठों से सम्बद्ध कुछ प्रश्न और कुछ क्लिष्ट शब्दों के अर्थ दिये हैं।

प्रत्येक पाठ के अन्त में एक अभ्यास है। इन अभ्यासों में हमने दो बातें नई दी हैं—हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद और संस्कृत प्रश्नों के संस्कृत में उत्तर। अनुवाद में केवल वे ही

शब्द प्रयुक्त हैं, जो उस पाठ में विद्यमान हैं, और संस्कृत-प्रश्नों के उत्तर भी प्रश्न-वाक्यों में ही एक-दो शब्दों के परिवर्तन या प्रयोग से दिये जा सकते हैं। इस विधि से छात्रों में जो संस्कृत-संभाषण के प्रति उदासीनता और संकोच रहता है वह किसी अंश में दूर हो सकेगा। अन्त में अध्यापक-महोदय-वर्ग से विनय है कि वे प्रत्येक पाठ को अभ्यासों-सहित पढ़ाने का यत्न करें; तभी छात्रों में वे उनकी रुचि और भाषाज्ञान में प्रवृत्ति कराने के समर्थ हो सकेंगे।

—सन्त धर्मचन्द्र

विषयानुक्रमणिका

उत्तरार्धम्

गद्य-खण्डः

पद्य-खण्डः

उत्तरार्धम्

गद्य-खण्डः

कवि-चातुर्यम्—१

एकदा गुर्जर-देशीयः कश्चित् कविः कवि-वत्सलं काशीराजं द्रष्टुं काशीमगच्छत्। गत्वा च तत्र राज-भवनं प्रविविक्षुः द्वाःस्थेन दौवारिकेणान्तः प्रवेशात् न्यरुध्यत। सप्रश्रयमनुनीयमानः स 'यदि त्वयान्तःप्रवेशः इष्यते तर्हि किञ्चित् मह्यं दीयेत। अन्यथा प्रवेशः दुर्लभः।' इत्युवाच।

एतच्छ्रुत्वा कविः प्रत्यवदत्—'भद्र! अहमकिञ्चनः, मत्पार्श्वे किमपि दातुं न विद्यते। किन्तु राज्ञः सकाशात्

किञ्चिच् चेत् दातुं लभ्येत, तर्हि तस्यार्धं तुभ्यं दास्यामि।' तत् स्वीकृत्य दौवारिकः तस्मै प्रवेशाभ्यनुज्ञां दत्तवान्।

किञ्चदग्रे गत्वा स द्वितीयेन केनापि दौवारिकेण तथैव निवारितः। तेनापि राज्ञः लभ्यमानस्यार्धं दातुं प्रतिज्ञाय स कविः कथञ्चित् राज्ञः सकाशं प्राप्तः। प्राप्तश्च तत्र स्व-कविता-निर्माण-चातुर्येण राजानं भृशं सन्तोषितवान्। प्रीतो नरपतिस्तं सत्कृत्य तस्मै वारण-मेकं दापयितुं मन्त्रिणमादिशत्।

राज्ञो वचनं निशम्य कविराह—'राजन्! अहमस-कृल्लब्ध-वारण एवास्मि। अतोऽद्य तल्लाभेन न मे किमपि प्रयोजनम्। अतो किमप्यन्यद् दत्त्वा मेऽभिलषितं पूरणीयम्।'

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

१—यह मानकर दरबान ने उसे अन्दर जाने की अनुमति दे दी।

२—आज मुझे कुछ और दीजिये।

३—जब वह अन्दर जाना चाहता था तो दरबान ने उसे रोका।

(ख) इनकी क्रियाओं के वाच्य बताकर उन्हें बदलो और वाक्य फिर से बनाओ।

१—यदि त्वयान्तः प्रवेश इष्यते तर्हि किंचित् मह्यं दीयेत।
तस्मै प्रवेशाभ्यनुज्ञां दत्तवान।
द्वितीयेन दौवारिकेण तथैव निवारितः।

२—इसी पाठ में से कर्मवाच्य क्रिया के कुछ और वाक्य चुनो।

३—प्राप्तः, द्रष्टुम्, स्वीकृत्य, पूरणीयम्—इन कृदन्त-पदों के धातु और प्रत्यय बताओ।

(ग) १—कवि कहाँ गया था ?

२—उसे राजा के दरबान ने क्यों रोका ?

३—उसे अन्दर जाने की अनुज्ञा कैसे मिली ?

४—राजा उस पर प्रसन्न क्यों हुआ ?

५—राजा उसे क्या देना चाहता था ?

कवि-चातुर्यम्—२

राजोवाच—'उच्यतां सुकवे ! किन्तेऽभिलषितम् ?'

कविरब्रवीत्—'राजन् ! मयि परितुष्टश्चेत् भवान्, तर्हि शतं प्रहारान् मे पारितोषिकत्वेन विधेहि ।'

राजा कवेराशयमज्ञात्वा साश्चर्यमब्रवीत्—'सुकवे ! किमनेनोपहासेन ! यद् यदन्यद् रत्नादिकं हिरण्यं वा भवताभिप्रेतं तद् याचनीयम् ।'

कविः प्रत्युवाच—'न मे शतं प्रहारान् विना अन्येन केनचित् प्रयोजनम् ।'

विवशो राजा तदभीष्टं पूरयितुं वेत्र-हस्तं दण्ड-पुरुष-

माज्ञापयत्—'अस्य पृष्ठे वेत्रेण शतं प्रहाराः कर्तव्याः ।' यदा च स दण्ड-पुरुषः प्रहारान् कर्तुमुद्यतोऽभवत् तदा स सत्वरमवदत्—'क्षणं प्रतीक्षस्व । अस्याः सम्भावनाया अंश-हरौ द्वौ दौवारिकौ । राज्ञः सत्काराल्लभ्यमानस्यै-कमर्धमेकस्मै, अपरमर्धञ्चान्यस्यै मया दातुं प्रतिज्ञा-तम् । तस्मादेते शतं प्रहाराः समं विभज्य तयोः पृष्ठयोः पात्यन्तां येनाहं पूर्ण-प्रतिज्ञः भवेयम् ।'

राजा तौ द्वावपि दौवारिकौ आनाययत् । तयोः च पृष्ठे पञ्चाशतं प्रहारान् वेत्रेण प्रदापितवान् ।

अन्ते कवेः कौशलेन परितुष्टः राजा तस्मै बहु-पारि-तोषिकं दत्त्वा तं सम्मान-पुरःसरं प्रस्थापयामास ।

न बलं बलमित्याहुः बुद्धि-रेव बलं महत् ।
यथा बुद्धि-प्रभावेण कविः ख्यातिं परां गतः ।।

अभ्यासः

(क) इनमें रेखाङ्कित समस्त शब्दों का विग्रह करो और उनके नाम बताओ—
येनाहं पूर्णप्रतिज्ञः भवयेम् ।
राजा वेत्रहस्तं दण्डपुरुषमाज्ञापयत् ।

(ख) १—इनमें रेखाङ्कित पदों में ये विभक्तियाँ क्यों हैं ?
किमनेनोपहासेन ।

तस्मै बहुपारितोषिकं दत्त्वा।

प्रहारान् मे पारितोषिकत्वेन विधेहि।

२—विना, प्रयोजनम्—इनके प्रयोग में कौन-कौन सी विभक्ति होती है? इस पाठ में से इनके प्रयोग के वाक्य चुनो।

३—राज्ञः सकाशाल्लब्धस्यैकमर्धमेकस्मै, अपरमर्धञ्चान्यस्मै। इसमें से सब सन्धियों को अलग-अलग करो।

४—प्रदापितवान्, प्रस्थापयामास, पात्यन्ताम्, आनाययत्—ये किस प्रकार की क्रिया के रूप हैं? णिजन्त क्रिया का प्रयोग किस अर्थ में आता है?

(ग) १—कवि ने राजा से क्या इच्छा प्रकट की?

२—जब दण्ड-पुरुष कवि को दण्ड देने लगा तो उसने क्या कहा?

३—दरबानों को पचास-पचास कोड़े क्यों लगवाये गये?

४—इस कथा की शिक्षा बताओ।

करगरा-कथा—१

अस्ति वत्सोमं नाम नगरम्। तत्रैको विद्वान्, परं दरिद्रो ब्राह्मणः। तस्य भार्या करगराभिधाना यथार्थ-नाम्नी सर्वजन्तूद्वेग-कारिणी यत्-द्वार-देश-वृक्ष-स्थितो भूतोऽपि तस्या भयात् पलाय्याटव्यां गतः। ब्राह्मणोऽपि तस्या उद्वेगाद् गृहं परित्यज्य देशान्तराभिमुखोऽभवत्। मार्गे स तेन भूतेनोक्तः—'विप्रवर ! मार्ग-श्रान्तस्त्वम्। तेन त्वयाद्य ममातिथिना भाव्यम्।'

विप्रेण परं भीतेनोक्तम्—'यद्यातिथ्यं करोषि तद् विधेहि शीघ्रम्।' भूतेनोक्तम्-भवता न भेतव्यम्। त्वं मम

स्वामी, यतोऽहं त्वद्-गृहद्वारस्थः करगरा-भयेनात्रागतः। मया च भवतः किमप्युपकर्तव्यम्। तस्मात्त्वं मदनभूपतेर्मृगावतीं नाम राजधानीं गच्छ। तत्र चाहं तत्पुत्रीं मृगलोचनां ग्रहीष्ये। साचान्यैर्मान्त्रिकैर्नीरुजा न भविष्यति। त्वयि च समागतेऽहं तां त्यक्त्वा गमिष्यामि। त्वया च तत्र मन्त्र-विधि-निपुणता-व्याजः कार्यः। अनेन महत् धनं ते लभ्येत।

इति भणित्वा भूतो गत्वा राजपुत्रीं जग्राह। विप्रोऽपि तत्र ययौ। राज्ञा स्वदुहिता भूतेनाविष्टा दृष्टा। 'यः कश्चनैनां पिशाचाद् मोचयेत स समुचितं पुरस्कारं लभेत।' इति राज्ञा घोषणा दत्ता।

अभ्यासः

(क) तस्या भयात् पलाय्याटव्यां गतः
तेन त्वयाद्य ममातिथिना भाव्यम्।
यः कश्चनैनां पिशाचाद् मोचयेत्।
इनमें जहाँ-जहाँ सन्धि हुई है उसको काटो।

(ख) १—राज्ञा स्वदुहिता भूतेनाविष्टा दृष्टा।
मार्गे स तेन भूतेनोक्तः।
इति राज्ञा घोषणा दत्ता।

इन वाक्यों में जहाँ-तहाँ क्तान्त क्रियायें हैं उन्हें क्तवत्-अन्त में बदलकर वाक्य फिर लिखो।

२—इसपा ठ में से विधिकृदन्त क्रिया-पदों को चुनकर उनके धातु और प्रत्यय बताओ।

३—महत् धनं ते लभ्येत ।

स पुरस्कारं लभेत ।

इन वाक्यों में प्रयुक्त लभ्येत और लभेत रूपों का भेद बताकर इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो ।

(ग) १—करगरा कौन थी ?

२—मार्ग में ब्राह्मण को कौन मिला ?

३—भूत ने उसे क्या शक्ति दी ?

४—राजपुत्री को क्या रोग था ?

करगरा-कथा—२

ततोऽसौ विप्रः तत्रगत आत्मानं मान्त्रिकं प्रख्यापयामास । राजा च तमात्म-पुत्र्या उपचारे नियोजितवान् । तथापि भूतो यावन्न मुञ्चति तां तावद् विप्रः किं करोत्विति प्रश्नः ।

विप्रेण कृतेऽपि यत्ने यदा भूतः न निवृत्तः तदा तेनाभिहितम्—

मनुष्याः सुकुलोत्पन्ना अपि च ब्रह्मचारिणः ।
न भवन्ति मृषावाचः किं पुनर्देवयोनयः ॥१॥

भूतेन मुक्तां निज-सुतां ज्ञात्वा ब्रह्मणाय सा सुता राज्यार्धं च दत्तम् । विप्रोऽपि पूर्ण-मनोरथो भूत्वा जगाम ।

अत्रान्तरे स भूतः कर्णवतीं गत्वा तत्र राज्ञो भार्या सुलोचनां जग्राह । सा मदनस्य पितृष्वसा । सा चात्यर्थं पीडिता जीवित-शेषाऽभूत् । सापि शत्रुघ्न-नरपते-र्भार्या केशवं मान्त्रिकमाकारयामास । परं भूतः तां नात्यजत् । अन्ते करगरा-पतिर्भार्यानुरोधतो जगाम । तमागतं दृष्ट्वा भूतस्तं तर्जयन्नुवाच—'मया यत् प्रतिपन्न-मासीद् विप्र ! तत् कृतम् । अधुना त्वयात्मा रक्षणीयः ।' स द्विजः न मन्त्रं न तन्त्रं वा जानीते । ततः किं करोतु ? कालवेदी स तत्कर्णोपान्ते जगाद—

प्राप्ता करगरा भूत ! पृष्ट-लग्नात्र मेऽधुना ।
तदभयाच्चात्र संप्राप्तस्तद् व्याख्यातुमिहागतः ॥२॥

श्रुत्वैतद् वचनं भूतो भीतो विस्मित-मानसः ।
यामीति ब्राह्मणं प्रोच्य पात्रं त्यक्त्वा जगाम तत् ॥३॥

अत उच्यते—

कर्कशाभ्यो हि नारीभ्यः भूता देवाश्च बिभ्यति ।
करगरा-नाम—संत्रस्तः भूतोऽसौ प्रपलायितः ॥४॥

अभ्यासः

(क) विप्रेण कृतेऽपि यत्ने यदा भूतः न निवृत्तः तदा तेनाभिहितम् ।
भूतस्तां त्यक्त्वा निर्गतः ।
इन वाक्यों में कृदन्त-शब्दों को चुनो ।

(ख) १—ब्रह्मचारी, सुता, ब्राह्मणः—इनके लिङ्ग बदलो ।
२—इन समस्त पदों के विग्रह बताओ—
विस्मित-मानसः, भार्यानुरोधतः, सुकुलोत्पन्नाः ।
३—इस पाठ में से णिजन्त क्रिया-पद चुनो ।

(ग) १—भूत ने राजपुत्री को न छोड़ा तो ब्राह्मण ने क्या कहा ?
२—भूत ने फिर क्या किया ?
३—ब्राह्मण के उपचार करने पर भी जब भूत ने सुलोचना को न छोड़ा तो ब्राह्मण ने क्या किया ?
४—भूत क्यों भाग गया ?

भोजराजस्य सिंहासनोद्धार-कथा—१

एकदा कश्चिद् ब्राह्मणः क्षेत्रमेकं कृष्ट्वा तत्र यवादीनवपत्। तत्र दैवान् महत् फलमभूत्। तत्र क्षेत्रे स ब्राह्मण उच्चस्थाने एकत्र समुपविश्य पक्षिणः समुत्थापयतिस्म।

तत एकदा भोजराजो विहरन् सकल-राजकुमारैः समवेतस्तत्-क्षेत्र-समीपं यावद् गच्छति तावन्मञ्चोपरिस्थितेन ब्राह्मणेनोक्तम्—'भो-राजन्! एतत् क्षेत्रं सम्यक् फलितमस्ति। ससैन्यः समागत्य यथेच्छं भुज्यताम्, अश्वेभ्यश्च चणका दीयन्ताम्। अद्य मम जन्म सफलमभूत् यतो भवान् ममातिथिर्जातः। ईदृशः प्रस्तावः कदाकदा सम्पद्यते।'

तच्छ्रुत्वा स राजा क्षेत्र-मध्ये प्रविष्टः। अथ ब्राह्मणोऽपि मञ्चकादवरुह्य राजानं क्षेत्र-मध्य-स्थितं भणति-भो राजन् ! किमयमधर्मः क्रियते ? इदं ब्राह्मण-क्षेत्रं विनाश्यते त्वया। जनैर्यद्यन्यायः क्रियते, प्रतिकारार्थं तुभ्यं निवेद्यते। त्वमेवाद्यान्यायं कर्तुं प्रवृत्तः, त्वां को निवारयिष्यति ? भवान् धर्म-शास्त्राभिज्ञः ब्राह्मण-द्रव्यं कथं नाशयति ? ब्राह्मण-स्वं विषवत्। तथाहि--

न-विषं विषमित्याहुः ब्रह्म-स्वं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्म-स्वं पुत्र-पौत्रकम् ॥

इति तेनोक्तं श्रुत्वा राजा यावत् क्षेत्राद् वहिः सपरिवारो निर्गच्छति, तावत् पक्षिणः समुत्थाप्य पुनः मञ्चमारूढो विप्रो वदति—'भो राजन् ! किमिति गम्यते ? क्षेत्रं साधु फलितमस्ति। यावनालक-दण्डान् अश्वादयः भक्षयन्तु। बहून्युर्वारुक-फलानि सन्ति, तानि भुज्यताम्।'

पुनर्ब्राह्मण-वचनमाकर्ण्य सपरिवारो राजा यावत् क्षेत्र-मध्ये प्रविशति तावत् पक्ष्युत्थापनार्थं मञ्चादवरुह्य स पुनस्तथैवाभणत्। ततो राजा स्व-मनसि विचारयति—'अहो आश्चर्यम् ! यदायं ब्राह्मणो मञ्चमारोहति तदास्य चेतसि 'दातव्यं, भोक्तव्यमिति' बुद्धिरुत्पद्यते। यदा च

मञ्चादवतरति तदा विपर्ययः जायते। अतोऽहमेतं मञ्चमारुह्य पश्यामि किमेतदिति।'

अभ्यासः

(क) १—ब्राह्मणः क्षेत्रे किम् अवपत् ?

२—भोजराजः क्षेत्रे कम् अपश्यत् ?

३—ब्राह्मणः क्षेत्रं किं करोतिस्म ?

४—ब्राह्मणः भोजं किम् उक्तवान् ?

(ख) इनमें रिक्त स्थानों को भरकर वाक्य पूर्ण करो—

त्वां निवारयिष्यति।

भवान्—अतिथिः—।

क्षेत्र-समीपं—गच्छति तावत् ब्राह्मणेन—।

(ग) इन रूपों में किन-किन धातुओं से कौन-कौन उपसर्ग लगकर धातु के अपने अर्थ में क्या परिवर्तन हुआ है ?

समुपविश्य, समुत्थापयति, विहरन्, समागत्य, प्रविष्टः, अवरुह्य, निर्गच्छति, आरोहति, अवतरति।

इनमें से जिन-जिन रूपों में एक ही धातु से अलग-अलग उपसर्ग लगे हैं, उन्हें बताओ।

इन धातुओं के साथ ये उपसर्ग लगाकर इनका अर्थभेद वाक्यों द्वारा बताओ—

गम्—निर्, आ, उप, अनु, अधि, अव।

रुह्—आ, अव, अधि।

भोजराजस्य सिंहासनोद्धार-कथा—२

एतत् विमृश्य राजा मञ्चमारुरोह। तदा तस्य चेतसि वासनैवमभूत्—'विश्वस्यार्तिः परिहरणीया, सर्वेषां दारिद्र्यं सम्यग् निवारणीयं, दुष्टा दण्डनीयाः, सज्जनाः पालनीयाः, प्रजा धर्मेण रक्षणीया। किं बहुना, अस्मिन् समये यदि कश्चिच्छरीरमपि प्रार्थयिष्यते तदपि देयम्।'

आनन्द-परिपूर्णः पुनर्विचारयति—'अहो! एतत् क्षेत्रमस्यैवंविधां बुद्धिमुत्पादयति।'

इति विचार्य राजा ब्राह्मणमब्रवीत्—'भो ब्राह्मण! तवैतस्मात् क्षेत्रात् कियल्लाभो भवति? अहमेतत् क्षेत्रं क्रेतु-

मिच्छामि।'ब्राह्मणेनोक्तम्—'भो राजन्! सकल-कला-कुश-लेन त्वयाविदितं किमपि नास्ति, यदर्हसि तत्कुरु। राजा नाम साक्षाद् विष्णोरवतारभूतः । तस्य दृष्टिर्यस्योपरि पतति तस्य दैन्य-दुर्भिक्षादयो नश्यन्ति। राजा हि साक्षात् कल्पवृक्षः। भवत्कृपया मम दैन्य-दारिद्र्यादीनामवसानं जातम्।'

ततो राजा ब्राह्मणं धनेन पुष्कलेन सन्तोष्य तत्-क्षेत्रं च गृहीत्वा मञ्चकाधः खानयितुं प्रारभत। पुरुष-प्रमाणे गर्ते जाते शिलैका रम्या तत्र प्राप्ता। तदधश्चन्द्र-कान्त-शिला-विनिर्मितं नाना-रत्न-खचितं दिव्यमेकं सिंहा-सनं दृष्टम्। तद् दृष्ट्वा भोजराजः परमानन्द-पूर्णः तद् ग्रामं प्रति नेतुं यदोच्चालयति, तावत् तदधिकं गुरु भवति, नोच्चलति च।

ततोऽसौ नृपः मन्त्रिणं भणति—'भो मन्त्रिन्! किमर्थमेतत् सिंहासनं नोच्चलति?' मन्त्रिणोक्तम्—'राजन्! एतत् सिंहासनं दिव्यमपूर्वं च। बलि-होम-पूजादिकं विना नोच्चलिष्यति।'

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

१—दुष्टों को दण्ड देना चाहिए ।
२—इस क्षेत्र से तुम्हें कितना लाभ होता है ?
३—यह देखकर राजा आनन्द से भर गया ?
४—यह सिंहासन क्यों नहीं चलता ?

(ख) १—इस पाठ में से क्त-अंत क्रियापदों को चुनो ।
२—इच्छामि, चलिष्यति, अवादीत्, विचारयति—
इन रूपों के धातुओं के क्रमशः लङ्, लोट्, लट् और लृट् के किसी एक रूप का अपने वाक्यों में प्रयोग करो ।
३—बहून्यूर्वारुक-फलानि सन्ति, तान्युपभुज्यताम् ।
इस वाक्य का पद-परिचय दो ।

(ग) १—मंच पर चढ़ कर राजा के मन में कैसे विचार हुए?
२—राजा ने ब्राह्मण से क्या पूछा ?
३—ब्राह्मण ने क्या उत्तर दिया ?
४—सिंहासन उठता क्यों नहीं था ?

सुमति-सचिव-कथा—१

कस्मिंश्चिद्देशे शूरसेनो नाम राजासीत् । स सुतनिर्विशेषं प्रजाः पालयन् सुखेन कालं नीतवान् । सुमतिर्नाम तस्य मन्त्री । तस्य ईश्वरे परमो विश्वासोऽभवत् । 'जगतीह नक्तन्दिनं यत् किञ्चित् घटते तत् सर्वमेव शुभाय।' इति तस्य बुद्धिरासीत् । शुभं वाशुभं किञ्चिदपि धीरस्यास्य चित्तं विकलयितुं न प्रभवतिस्म। 'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तत् सर्वमेव शुभाय ।' इति स सर्वदैवाकथयत् ।

अथ दैवात् कदाचन भूपतेरंगुल्यां स्फोटकः सञ्जातः। तेन स परं क्लिश्यमानो दूतेन मन्त्रिणमानाययत् । आग-

तश्च सुमतिः राज्ञि पीडया व्यथ्यमानेऽपि 'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तदेव शुभाय' इत्यवोचत् । तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजा अचिन्तयत्—कथं दारुणहृदयोऽयं सचिवः ! एवं क्लेशगतमपि मां नानुकम्पते ।

अथ कदाचित् पीडया नरपतेरंगुलिः स्खलिता बभूव । स च संदिग्ध-जीवितोऽभवत् । पुनः स मन्त्रिण-माहूतवान् । आगत्य च स तदापि 'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तदेव शुभाय ।' इत्यवोचत् । तस्य तेन वचनेन क्रोध-रक्त-नयनो नृपतिरचिन्तयत्—'अहो! कथं कृतघ्नो-ऽयं दुष्टः । स्वस्थश्चेन्नूनमेनं हनिष्यामि । इति'

अथ दिष्ट्या राजा रोगाद् विनिर्मुक्तो बभूव । गतेषु दिनेषु संसदं समेत्य पूर्ववत् राज्य-कार्यं कर्तुम् आरब्धः ।

अथैकदा राजा मृगयायै यातुकामो मन्त्रिणं प्राह—'भो मन्त्रिन् ! अहं मृगयायै गन्तुकामः । यथारीति सुप्रबन्धः क्रियताम् ।' सोऽपि—'देवपादा यथाज्ञापयन्ति ।' इत्युक्त्वा सर्वमेवानुष्ठितवान् ।

ततः स नृपतिरश्वमारुह्य बहुभिर्लोकैरनुगम्यमानो मन्त्रिणा सह प्रतस्थे । निविड-काननाभ्यन्तरमासाद्य अनु-चरान् सर्वानादिदेश—'युष्माकं दूरमनुसरणेनालम् । मन्त्रि-

णानुगतोऽहं दूरतरं वनमवगाहिष्ये। भवन्तश्च सायं यावन् मे प्रत्यावर्तनमपेक्ष्य गृहं प्रति निवर्तन्ताम्।'

अभ्यासः

(क) १—भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तदेव शुभाय। इस वाक्य की क्रिया का वाच्य बदलकर इसे फिर से लिखो।

२—इस पाठ में से भूतकाल (लङ्) की सब क्रियाओं के लकार पुरुष और वचन बताओ।

३—इनमें सन्धिच्छेद करो—

कस्मिंश्चिद्देशे, रोगाद् निर्मुक्तः, विनिर्मुक्तो बभूव।

४—'यातुकाम' में क्या विशेषता है? इसी प्रकार का एक और रूप इसी पाठ में कहाँ प्रयुक्त हुआ है?

(ख) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

जो आपकी आज्ञा।

और दूर मेरे पीछे न चलें।

रात-दिन जो कुछ होता है वह ईश्वर की कृपा है।

(ग) १—शूरसेन का मन्त्री कौन था?

२—वह सदा क्या कहता रहता था?

३—राजा को उस पर क्रोध क्यों हुआ?

४—राजा उसे वन में क्यों ले गया?

सुमति-सचिव-कथा—२

ततो राजा मन्त्री चाश्वमारुह्य द्रुतं गभीर-वन-मध्यं प्राविशताम् । सहसा कूपमेकमालोक्य नृपति-रचिन्तयत्—'अवसरोऽयमस्माकं सङ्कल्पसिद्धेः । ततः तृष्णा-व्याजमवलम्ब्य जलानयनार्थं मन्त्रिणमादिशामि, कूपं सन्निहितञ्चैनं कूपे पातयामि।' इत्यवधार्य मन्त्रिणं प्राह—'सुमते ! महती मे तृष्णा जाता । नाहं दूरतरं गन्तुं शक्नोमि । कूपोऽयमारात् दृश्यते। पश्य तत्र जल-मस्ति न वा।'

मन्त्री नृपतेराज्ञया यावत् नत-तुण्डः जलं पश्यति तावत् राजा झटिति पृष्ठतस्तं कूपेऽपातयत् । सचिवोऽसौ

पतन्नपि 'भगवता विधात्रा यदेव विधायते तदेव शुभाय।' इति प्रोवाच। राजापि स्वनगरं प्रतिनिवृत्तः।

तदा सन्ध्या समागतासीत्। भगवान् काश्यपेयः स्वीय-मयूखान् संहृत्य पश्चिमोन्मुखोऽभवत्। श्वापदाः सर्वे विवरेभ्यः निर्गत्य समन्तात् परिधावितुमारेभिरे। नृपतिर्न कथंचित् वन-पथात् वहिरायातुं समर्थः वृक्षमेकमारुह्य अवतस्थे। अश्वोऽपि तदधस्तात् तस्थौ।

अथ निशीथ-समयः जातः। सहसा तद्वनं प्रकम्पयन्निव महान् कोलाहलः तत्र समुदितः। अथ केचन जना वृक्षाभ्याशमेत्य सज्जित-तुरङ्गमेकमालोक्य परस्परं कथयामासुः—'सिद्धमस्माकमभिलषितम्। तुरङ्गमेण मानव-समागमोऽश्यंभावी। इदानीमेनमनुसन्धाय प्रातः राज-सकाशं नेष्यामः। सोऽपि चामुण्डायै बलिमुपहारीकृत्य सिद्ध-कामो भविष्यति।'

तेषु नरेष्वेकतमो वृक्षमारुह्य राजानं बद्ध्वा वृक्षादवततार। राजानञ्चाश्वमारोप्य विजयगीतिं गायन्तः ते सर्वे चलिताः। ततस्ते स्व-नृपतिमुपगम्यासादितोऽयं बलिरिति न्यवेदयन्।

अभ्यासः

(क) १—इन समस्त पदों का विग्रह करो—

संकल्प-सिद्धेः, कूप-सन्निहितम्, सिद्ध-कामः, हीनाङ्गुष्ठम्।

२—निर्गत्य, आरुह्य, प्राप्य, परिधावितुम्, पतन्—
इन कृदन्तों के प्रकृति-प्रत्यय बताकर इनमें से 'आरुह्य' और 'परिधावितुम्, का प्रयोग अपने वाक्यों में करो।

३—इन अव्ययों का प्रयोग अपने वाक्यों में करो—
वहिः, सहसा, कथम्, आरात्।

४—'दूरतरम्' विशेषण का अतिशय-वाचक रूप बताओ।
'द्रुत' की तीनों अवस्थाओं के विशेषण बताओ।

(ख) १—एक कुआँ देखकर राजा ने क्या कहा?

२—उसने सुमति को क्या कहा?

३—गिरते-गिरते सुमति ने क्या कहा?

४—लोग राजा को पकड़ कर कहाँ ले गये?

सुमति-सचिव-कथा—३

अथ क्रमेण निशावसानमभूत्। प्रातः ते देव्याः पुरतो तं नीत्वा यावत् खड्गेन प्रहर्तुमुद्यतास्तावत् राजा तम् अङ्गुष्ठेन हीनमवलोक्याह—आः पापाः! किमिदं कृतम्! हीनाङ्गुष्ठं नरमिमं कथम् चामुण्डायै बलि-रूपेण दास्यामि। इत्युक्त्वा तं दूरीचकार। राजापि दिष्ट्या प्राणान् प्राप्य पलायाञ्चक्रे।

अथ स किञ्चिद् दूरं गत्वा चिन्तितवान्—अहो! यदेव सचिवेनोक्तं तत्सर्वथा सत्यम्। 'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तदेव शुभाय।' इति मया सम्यक् परीक्षितम्। अङ्गुष्ठहीनं मां ते नावधन्। तत्सत्वरमहं सुसचिव-

सकाशं गच्छामि । धिङ्मां यदहं कारणमन्तरेण तं हतवान् । किमद्यापि स जीवति ? भवतु, गत्वा पश्यामि ।

इत्यवधार्य स तत्कूप-सन्निधौ गत्वोच्चैः प्रोवाच—'सुमते ! धार्मिक-प्रवर ! ममैक-बन्धो ! किमद्यापि जीवसि ? देहि मे प्रतिवचनम् ।' भूपतेर्वचः श्रुत्वा मन्त्री कूपात् प्रोवाच—'राजन् ! मृतकल्पोऽत्र तिष्ठामि । यदीच्छसि मामुद्धर ।'

ततो नृपतिस्तं कूपादुज्जहार । वारशश्चात्म-दोषं स्वीकृत्य तं क्षमामयाचत । मन्त्रिणोक्तम्—'महाराज ! 'यदेव भगवता विधात्रा विधीयते तदेव सर्वं शुभाय ।' इत्यत्र नास्ति सन्देहः । ममापि कूपे निक्षेपः शुभाय । हीनाङ्गुष्ठस्य भवतो मुक्तिश्चेद् अभवत्, परं त्वदनुसङ्गिनः पूर्णावयवस्य मम परित्राणं न कथमप्यभविष्यत् । अतो ज्ञायतामेतत्-'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तदेव शुभाय,

ततस्तौ परस्परं प्रीतौ स्वराज्यं प्रतिनिवृत्तौ ।

उक्तं च—यद् यद् विधीयते धात्रा तत्तदेव शुभाय वै ।
स्पष्टं निदर्शनं चात्र सुमतेर्मन्त्रि-सत्तमः ॥

अभ्यासः

(क) १—धिङ्मां यदहं कारणमन्तरेण तं हतवान् ।
रेखाङ्कित में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग क्यों हुआ है ?

२—तं क्षमामयाचत। इसमें अयाचत के साथ दो कर्म क्यों हैं? किसी और द्विकर्मक धातु का प्रयोग अपने वाक्य में करो।

३—परीक्षितम्, उद्धर—इनमें किस-किस उपसर्ग के साथ कौन-कौन धातु हैं?

ईक्ष् के साथ प्र, अप, सम्, अव और हृ के साथ आ, प्र, सम्, वि—उपसर्गों को लगाकर उनके अर्थ बताओ।

(ख) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

१—मैंने उसे बिना कारण के पीटा है।

२—मैं कभी न बच सकता।

३—मैं अधमरा पड़ा हूँ।

(ग) नृपतिः कूपसन्निधौ गत्वा—।

देहि—प्रतिवचनम्।

राजापि—प्राप्य पलायाञ्चक्र।

इनमें रिक्त स्थानों को भरो।

समस्या-पूर्तिः

ततः प्रविशति पत्नी-सहितः कोऽपि विलोचनो विद्वान्। स च 'स्वस्ति' इत्युक्त्वा प्राह—

निजानपि गजान् भोजं ददानं वीक्ष्य पार्वती ।
गजेन्द्र-वदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुनः पुनः ॥१॥

ततो राजा भोजः सप्तगजांस्तस्मै ददौ ।

ततौ राजा विद्वत्कुटुम्बं पुरतः स्थितं वीक्ष्य ब्राह्मणं प्राह—

द्विज सत्तम्, भवता समस्यापूर्तिः विधेया—

'क्रिया-सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ।'

वृद्ध-द्विजः प्राह—

घटो जन्म-स्थानं, मृग-परिजनो भूर्ज-वसनम्,
वने वासः, कन्दादिकमशनमेवंविध-गुणः ।
अगस्त्यः पायोधिं यदकृत कराम्भोज-कुहरे,
क्रिया-सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥३॥

ततो राजा बहु-मूल्यान् षोडश मणींस्तस्मै ददौ ।

ततस्तत्पत्नीं प्राह—'अम्ब ! त्वमपि किञ्चित् पठ ।

ब्राह्मणी प्रोवाच—

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः,
निरालम्बो मार्गश्चरण-विकलः सारथिरपि ।'
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रिया-सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥३॥

राजा तुष्टः सप्तदश गजान् सप्त रथांश्च तस्यै ददौ ।

ततः विप्र-सुतः पपाठ—

विजेतव्या लङ्का चरण-तरणीयो जलनिधिः
विपक्षः पौलस्त्यः रण-भुवि सहायाश्च कपयः ।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्षस-कुलम्,
क्रिया-सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥४॥

तुष्टो राजा विप्र-सुतायाष्टादश गजेन्द्रान् प्रादात् ।
ततः सर्वे ते तुष्टा निज-देशम् प्रत्यगच्छन् ।

अभ्यासः

(क) इनमें रिक्त स्थानों को भरो—

१—ततो राजा ब्राह्मणं पुरतः—वीक्ष्य—प्राह ।

२—राजा षोडश मणीन्—ददौ ।

३—रविर्यात्येव—प्रतिदिनमपारस्य नभसः ।

(ख) १—रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः ।

रेखाङ्कितों के शब्द, विभक्ति आदि बताओ ।

२—रक्षत्यद्य पुनः पुनः

सप्त गजांस्तस्मै ददौ

पदातिर्मर्त्योऽसौ ।

इन रेखाङ्कितों में सन्धिच्छेद करो ।

(ग) १—भोजराज की सभा में कौन आये ?

२—राजा ने उनके सामने क्या समस्या रक्खी ?

३—ब्राह्मण ने उसकी पूर्त्ति कैसे की ?

४—ब्राह्मण की स्त्री ने कैसे पूर्त्ति की ?

५—ब्राह्मणकुमार ने पूर्त्ति कैसे की ?

६—इस समस्या का भाव क्या है ?

परीक्षित्-चरितम्—१

आसीत् पञ्चसु पाण्डवेषु मध्यमोऽर्जुनो नाम ।तस्य भार्या सुभद्रा श्रीकृष्ण-भगिनी । तत्पुत्रोऽभिमन्युः । स षोडश-वर्षदेशीय एव भारत-युद्धेऽनेकान् शत्रून् अवधीत् । तत्पराक्रममसहमाना द्रोण-कर्ण-जयद्रथाः प्रत्येकं प्रत्येकं तं जेतुमसमर्थाः सन्तः मिलित्वा तमधर्मेण जघ्नुः । तदानीं तद्भार्या विराट्राज-पुत्र्युत्तरा अन्तर्वत्न्यासीत् ।

नियत-समयानन्तरं सा पुत्र-रत्नमजनयत् । युधिष्ठिरः तस्य शिशोः परीक्षित् इति नाम चकार । स उत्तर-कुमारस्य तनयाम् इरावतीम् उपयेमे । तस्यां तस्य जनमेजयाद्याश्चत्वारः तनया जाताः ।

स परीक्षिदेकदा वनं गतो मृगमेकमनुससार। मृगश्चार्धविद्धः प्राद्रवत्। परीक्षित्तस्य पृष्ठतो दूरं धावित्वापि तं मृगमलभमानः पिपासार्तः कुत्रापि जलाशयं नापश्यत्। तत्रैव पार्श्वे निमीलिताक्षं ध्यान-मग्नं मौन-व्रतधरं शमीकं नामर्षिं ददर्श। दृष्ट्वा चाचिन्तयत्—'एष ऋषिर्मह्यं पानीयं दास्यति।' इति मत्वा—'ब्रह्मन्! अहं पाण्डवानां प्रपौत्रः परीक्षिन्नाम चक्रवर्ती। आखेटे मया विद्धो मृगो धावन्नत्रागतः। अहञ्च तमनुधावन् पिपासाकुलः संजातः। विशुष्यत्तालवे मह्यं जलं दीयतां भवता।' इत्यवदत्।

समाधौ स्थितः स मुनिः किञ्चिदपि न प्रत्युवाच। तस्य मौनावलम्बनेन सञ्जात-कोपः परीक्षिन्नृपः दूरे पतितं मृतमुरगमेकं धनुष्कोट्योद्धृत्य मुनेरंसे क्षिप्त्वा प्राचलत्।

तस्य महर्षेः सुतोऽतितेजस्वी शृंगी नाम। तदानीं पार्श्व एव सम-वयस्कैः मुनि-कुमारैः क्रीडन्नास्ते। स आगत्य तातं तथावमानितं दृष्ट्वा कोप-रक्त-नेत्रः—'वृद्धस्य तपस्यभिरतस्य मम पितुः कण्ठे यः क्षत्रियापसदो मृतं सर्पमसृजत् तमेवातः सप्तमेऽहनि सर्पराट् तक्षकः दशतु।'—इति शशाप।

अभ्यासः

(क) १—तनयः, मृगः, कुमारः—इनके स्त्री-प्रत्ययान्त रूप दो।

२—सर्पराट्, अहनि, पृष्ठतः, प्रत्येकम्—इनका प्रयोग वाक्यों में करो।

३—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ—

द्रोण-कर्ण-जयद्रथाः, पिपासार्तः, निमीलिताक्षम्।

(ख) इस पाठ में से लङ् के और क्तान्त क्रिया के रूप चुनकर उनके क्रमशः पुरुष, वचन और विभक्ति तथा वचन बताओ।

(ग) १—परीक्षित कौन था ?

२—उसने बन में किसे देखा ?

३—उसके गले में मृत सर्प किसने क्यों डाल दिया ?

४—शृंगी कौन था ?

५—उसने राजा को क्या शाप दिया ?

परीक्षित्-चरितम्—२

तदानीमेव तत्पिता समाधेरुत्थितः स्वतनय-मुखात् सर्वमेव शाप-वृत्तमज्ञासीत् । शमीकः पुत्रं विनिन्द्य गौर-मुख-नाम्नः स्वशिष्यस्य मुखेन शाप-वृत्तान्तं राज्ञे निवेदयामास ।

अत्रान्तरे ऋषि-मुखात् शृङ्गिदत्त-शापं श्रुत्वा आत्मानमपराधिनं मन्वानः राजा परीक्षित् भृशं पर्यतप्यत । पुत्रं जनमेजयञ्च राज्येऽभिषिच्य यावच्छक्यमात्मोपायं कर्तुं प्रवृत्तः । गंगा-तटे प्रासादमेकमेक-स्तम्भं सर्पैरप्रवेश्यं कारयित्वा स्वयं च तत्रोपविश्यात्म-रक्षणाय विष-वैद्यान् आनययामास । तत्रैव राज्ञस्तत्त्वोपदेशार्थमागतेन व्यास-

पुत्रेण शुक्राचार्येण द्वादश-स्कन्दात्मकं श्रीमद्भागवतं सप्तसु दिवसेषूपदिष्टम् ।

ऋषि-शाप-प्रेरितस्तक्षकः सप्तमेऽहनि कतिपयैर्नागैर्युतः परीक्षितं दष्टुं विप्र-वेषेण समाययौ । दैवात्तेन धनाशया राजानं निर्विषं कर्तुं गच्छन् कश्चन सर्प-विषापहरण-विद्या-प्रवीणः विप्रः वर्त्मनि दृष्टः । तस्य विद्यामात्मना दष्टे वृक्षे फलवतीं विज्ञाय तस्मै सुप्रभूतं धनं दत्त्वा स तमर्ध-वर्त्मन्येव प्रतिनिर्वार्तितवान् ।

राज-प्रासादमुपगम्यासौ आत्म-सहचरान् भुजंगमान् तापस-रूपान् विधाय तेषामेव हस्ते उपायनत्वेन दातव्येषु फलेषु आत्मानं कृमि-रूपेणागोपयत् ।

गृहीतफले एव राजनि तक्षकः आत्मनः प्राकृत-रूपं विधाय राजानमदशत् । विष-संचारेण स मूर्छितोऽभवत्, क्षणेनैव च पञ्चत्वं गतः । परीक्षिति मृते तस्यात्मजः जनमेजयः भारत-सम्राट् बभूव ।

यद् भावि तद् भवत्येव कुर्याद् यत्न-शतान्यपि !
श्रृंगिणा दत्त-शापोऽसौ परीक्षिन्निधनं गतः ॥

अभ्यासः

(क) १—परीक्षिति मृते—में किस प्रकार की सप्तमी का प्रयोग हुआ है ?

२—इन समस्त पदों का विग्रह करो—

सर्प-विषापहरण-विद्या-प्रवीणः, स्व-तनय-मुखात् ।

३—इनके प्रकृति-प्रत्यय बताओ—

मन्वानः, विधाय, प्रतिनिवर्तितवान, मूर्छितः।

(ख) इनमें रिक्त स्थानों को भरकर वाक्य पूर्ण करो—

विषसंचारेण सः—अभवत्, क्षणेनैव च—गतः। यद् भावि—भवत्येव ।

(ग) शमीकः कस्मात् शाप-वृत्तं श्रुतवान् ?

शापवृत्तं श्रुत्वा परीक्षित् किं कर्तुं प्रवृत्तः?

तक्षकः कम् अदशत् ?

गज-शशकानाम्—१

कस्मिंश्चिद् वने चतुर्दन्तो नाम महागजो यूथाधिपः प्रतिवसतिस्म। तत्र कदाचित् महत्यनावृष्टिः संजाता प्रभूतवर्षाणि यावत्। सर्वाणि तडाग-नद-पल्लव-सरांसि जलाभावात् शोषमुपगतानि। अथ समस्त-गजैः गजराजः प्रोक्तः—देव ! सर्वे गज-कलभाः पिपासाकुला मृत-प्राया बहवो मृताश्च। तद् दर्श्यतां कश्चिज् जलाशयो यत्र जलं लभ्येत।

तद् वचनं श्रुत्वा चिरं ध्यात्वा तेनाभिहितम्—अस्ति मे विदित एको महान् नदः यः पाताल-गंगा-जलेन सदैव पूर्णः। तत्रगतानां भवतां जल-पानेन तृप्तिः भविष्यति। यूथा-

धिपस्य वचनमाकर्ण्य सर्वे गजाः तमुद्दिश्य चलिताः। पञ्चरात्रमुपसर्पद्भिः समासादितः स नदः। तस्य च केचित् स्वच्छं शीतं जलमपिबन्, अन्ये तन्मध्ये प्रविश्य तज्जलमवगाहितवन्तः। नदस्य समन्तात् असंख्याः शशकाः कृत-बिलाः तत्र निवसन्तिस्म। समस्तैरपि गजैरितस्ततो भ्रमद्भिः बहवो बिला भग्नाः, तन्निवासिनश्चानेके शशकाः भग्न-पाद-शिरोग्रीवा विहिताः। तेषु केचेन मृताः केचिज्जीवित-शेषा जाताः।

अथ गते तस्मिन् गज-यूथे शशकाः गज-पाद-क्षुण्ण-समावासाः, केचिद् भग्न-पादा, अन्ये जर्जरित-कलेवरा रुधिराप्लुताः, अपरे च हत-शिशवो वाष्प-पूर्ण-लोचनाः समेत्य मिथो मन्त्रं चक्रुः—'अहो ! विनिष्टा वयम्। नित्यमेव एतद् गज-यूथमागमिष्यति यतो नान्यत्र जलमस्ति। तत् सर्वेषामस्माकं नाशो भविष्यति।

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः।
हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥१॥

ततश्चिन्त्यतां कश्चिदुपायः।'

तेषु शशकेष्वेकः प्रोवाच—'एतस्यां स्थितावस्माभिः देश-त्यागः कार्यः। उक्तं च—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्' ॥२॥

ततश्चान्यः कश्चित् प्रोवाच—'भोः ! पितृ-पैतामहं स्थानं न युज्यते त्यक्तुम् । तत् क्रियतां तेषां कृते काचिद् विभीषिका यत् ते पुनः नात्र समागच्छेयुः । सा च विभीषिकेयं सम्भवति यदस्माकं कोऽपि चतुरतमः शशकः यूथाधिप-समीपे गत्वा वदेत् यत् 'विजयदत्तो नामाहं चन्द्र मण्डले निवसामि । तेन हि चन्द्रमसः 'शशी' इति प्रसिद्धिः । सोऽहं श्रीचन्द्रादेशात् भवन्तम् एतं नदं प्रति समागच्छन्तं निषेधयामि । यतो भवतामागमनेन शशकानां महती क्षतिर्जायते ।' एतत् सत्यं श्रद्धेयं च मत्वा कदाचित् ते अत्रागमनाद् विरमेयुः ।'

अभ्यासः

(क) १—इन जोड़े शब्दों का प्रयोग वाक्यों में करो—
यावत्-तावत्, यतः-ततः, चेत्-तर्हि, यदा-तदा ।

२—इस पाठ में से शत्रन्त रूप चुनो ।

३—इन समस्त पदों का विग्रह बताओ—

तडाग-ह्रद-पल्लव-सरांसि, पाताल-गंगा-जलेन, भग्न-पाद-शिरोग्रीवाः ।

४—'विरमेयुः' में परस्मैपद क्यों है ?

(ख) इनका संस्कृत में अनुवाद करो।
देर तक सोच कर वह बोला।
तालाब के चारों ओर खरगोश बिल बनाकर रहते थे।
हम सब का नाश हो जायगा।

(ग) १—बन में जल क्यों नहीं मिलता था ?
२—हाथी कहाँ गये थे ?
३—उनके कारण खरगोशों की क्या हानि हुई ?
४—उससे बचने का खरगोशों ने क्या उपाय सोचा ?

गज-शशकानाम्—२

तेष्वेकोऽवदत्—'यद्येवं तदस्ति लम्बकर्णो नाम शशकः। स च वचन-रचना-चतुरो दूत-कर्मज्ञः। स तत्र प्रेष्यताम्। उक्तं च—

साकारो निःस्पृहो वाग्मी नाना-शास्त्र-विचक्षणः।
पर-चित्तावगन्ता च राज्ञो दूतः स इष्यते' ॥३॥

अथान्ये प्रोचुः—'अहो ! युक्तमेतत्। नान्यः कश्चिदुपायोऽस्माकं जीवितस्य।' अथ लम्बकर्णो गज-यूथाधिप-समीपे गन्तुं निरूपितो गतश्च सः।

ततश्चलित्वा स लम्बकर्णः राज-मार्गमासाद्यागम्यं कञ्चित् स्थलमारुह्य यूथेन सहागच्छन्तं तं यूथाधिपं गज-

मुवाच--'भो भो दुष्ट गज ! किमेवं लीलया निश्शंक-तया चात्र चन्द्र-नदे आगच्छसि ? अतः परं नात्रागन्तव्यम् । अधुनैव निवर्तनीयम् ।'

तदाकर्ण्य विस्मित इव गज आह—'भोः कस्त्वम् ? किं च वदसि ?', गज वचनं श्रुत्वा लम्बकर्णः प्राह--'अहं विजयदत्तो नाम शशकश्चन्द्र-मण्डले-वसामि । साम्प्रतं भगवता चन्द्रमसा तव पार्श्वे प्रेषितोऽहं दूत-रूपेण । मया श्रीचन्द्रमसः आदेशस्ते स्पष्टं वक्तव्यः, यतः दूतस्य न दोषः, दूत-मुखा हि राजानः । उक्तंच--

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु बन्धु-वर्ग-वधेष्वपि ।
परुषाण्यपि जल्पन्तो वध्या दूता न भूभुजा' ॥४॥'

तच्छ्रुत्वास आह--'भोः शशक ! कथयतां भवान् भगवतश्चन्द्रमसः सन्देशम् ।' स आह--'भवतातीत-दिने यूथेन सहागच्छता प्रभूताः शशका निहताः । भवान् न वेत्ति किं यत् शशकाः मम परिग्रहः? यदि जीवितेन श्रियावा प्रयोजनं ततो नातः परमत्रागमनीयम्–' इति चन्द्रमसः संदेशः ।'

गज आह–'क्व वर्तते भगवान् चंद्रः?' स आह–'अत्रैव ह्रदे शशकानां हत-शेषाणां समाश्वासनाय समायातस्तिष्ठति ।'

गज ग्राह—'यद्येवं, तद् दर्शय मे भगवन्तं चन्द्रं येन तं प्रणम्यान्यत्र गच्छामः।'

शशकस्तं निशाकाले ह्रदतीरे नीत्वा जल-मध्ये स्थितं चन्द्र-विम्बमदर्शयत्। ग्राह च–भोः! एष चन्द्रो जल-मध्ये समाधिस्थः तिष्ठति। तन्निभृतं प्रणम्य सत्वरं प्रतिगच्छ।'

अथ गजस्त्रस्त-मनास्तं भूयोभूयः प्रणम्य प्रतिनिवृत्तः। शशकाश्च तद्दिनाद् आरभ्य सपरिवाराः सुखेन कालं नयन्ति । उक्तञ्च—

व्यपदेशेन महतां सिद्धिः सञ्जायते परा ।
शशिनो व्यपदेशेन वसन्ति शशकाः सुखम् ।।५।।

अभ्यासः

(क) १—साकारो······स दृश्यते । इस श्लोक में किस वाच्य की क्रिया का प्रयोग हुआ है ? इसमें से कर्ता, कर्म और क्रिया-पदों को चुनो ।

२—इनमें सन्धिच्छेद कर नियम बताइये—
यद्येवं, तदस्ति, ज्ञाति जायते, कस्त्वम्, कश्चिदुपायोऽस्माकम्।

३—भूभुजा, चन्द्रमसः, अस्माकम्, आगच्छन्तम्—इनके शब्द, विभक्ति और वचन बताओ ।

४—किमेवं लीलया अत्र ह्रदे आगच्छसि ?

यूथेन सहागच्छन्तं तं यूथाधिपम् उवाच ।

यदि जीवितेन प्रयोजनम् ।

इनमें रेखाङ्कित तृतीयांत-पदों की विभक्तियों के कारण बताओ ।

(ख) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

भगवान् चन्द्र ने मुझे आपके पास भेजा है ।

मुझे भगवान् चन्द्रमा का दर्शन कराओ ।

उसे प्रणाम कर जल्दी लौट जाओ ।

(ग) १—कः गज-यूथाधिपस्य समीपे गन्तुं निरूपितः ?

२—किम् उक्तं लम्बकर्णेन गज-यूथाधिपं प्रति ?

३—लम्बकर्णस्य वचनं श्रुत्वा गजाधिपः किं कृतवान् ?

सोमदत्त-चरितम्—१

कुमारः सोमदत्तोऽब्रवीत्—देव, एकदा भ्रमन्नहम् एकस्मिन् वने पिपासाकुलो लता-परिवृतं शीतलंनद-सलिलं पिबन् तत्रैकं रत्नमपश्यम्। तदादाय गत्वा कञ्चनाध्वानम् अम्बर-मणेरत्युष्णतया अग्रतो गन्तुमक्षमः किमपि देवता-यतनं प्राविशम् । तत्र च दीनाननं, वहु-तनय-समेतं कञ्चन विप्रम् अवलोक्याहं तं कुशलम् 'कश्च भवान् इति' अपृच्छम्।

स चाग्र-जन्मा प्रोवाच—'सुतानेतान् मातृ-हीनान् अनेकैरुपायैः रक्षन्निदानीं भैक्ष्य-वृत्तिमाचरन् वसामि शिवालयेऽस्मिन् ।' ततोऽहं पुनस्तं विप्रमपृच्छम्—'भूदेव, एतत्कटकाधिपतिः किन्नामधेयः, किमत्रा-गमन-कारण-मस्य ?' इति ।

ब्राह्मणः प्रत्यवदत्––‘सौम्य, मत्तकालो नाम लाटेश्वरो देशस्यास्य पालयितुः वीरकेतोः तनयां वामलोचनां नाम परिणेतुमिष्टवान्। वीरकेतुनामवधूत-प्रार्थनश्च तन्नगरम् आक्रान्तवान्। वीरकेतुरपि भीतो स्वतनयां तस्मै मत्त-कालायायच्छत् । स चासौ लाटेश्वरो ‘वामलोचनां स्वदेशे एव नीत्वा साडम्बरं परिणेया।’ इति निश्चित्य स्वदेशं गच्छन् अस्मिन् प्रदेशे कृतावासो वर्तते। कन्या-सारणे नियुक्तेन मानपालेन नाम्ना वीरकेतु-मन्त्रिणा निज-नाथाव-मान-खिन्नेन अन्तरैव मत्तपाल-वधाय सुगुप्तः षड्यन्त्रः रचितः ।’

तच्छ्रुत्वा तं बहु-तनयं विप्रं परिज्ञाय निर्धनं तस्मै तद्रत्नं प्रायच्छम् । स च विप्रः प्राप्त-रत्नः कुत्रचित् जगाम । तस्मिन् गते किञ्चित्-कालानन्तरं स एव भूदेवः निगडित-बाहु-युगलः कैश्चित् सैन्य-पुरुषैः सह प्रविश्य ‘अयमेव चौरः’ इति माम् अदर्शयत् । तेऽपि रज्जुभिः मां बद्ध्वा कारागारे प्राक्षिपन्। मत्तः च तस्मात् भूसुरात् श्रुतं सर्वं वृत्तान्तमवगत्य ते प्रोचुः––‘महाभाग, वीरकेतु-मन्त्रिणो मानपालस्य किंकरा वयम्। तदाज्ञया लाटेश्वर-मारणाय रात्रौ सुरङ्गद्वारेण तदागारं प्रविश्य तत्र च तम् अप्राप्य तस्य बहु-धनम् अपहृत्य वनं प्राविशाम ।’

(क) १—क इमां कथां वर्णयति ?

२—सोमदत्तः सलिलं पिबन् किम् अपश्यत् ?

३—किं कर्तुमिष्टवान् मत्तकालः ?

४—वीरकेतुः किं कृतवान् ?

५—के सोमदत्तं बद्ध्वा कुत्र प्राक्षिपन् ?

(ख) 'प्रायच्छत्' के साथ चतुर्थी,

'बद्ध्वा' के साथ तृतीया,

'उपेत्य' के साथ द्वितीया का प्रयोग अपने वाक्यों में करो।

(ग) इस पाठ में से क्तवत्-अन्त क्रिया के रूपों को चुनो।

सोमदत्त-चरितम्—२

अपरेद्युः लाटेश्वरानुचराः अस्मान् परिवृत्य दृढ़तरं च बद्ध्वा सर्वं तद्धनं गृहीतवन्तः। तस्मिन् गृहीते धने च एकं बहु-मूल्यं रत्नमप्राप्यास्मान् कारागारे क्षिप्तवन्तः।

तस्यामेव रात्रौ प्राप्तावसरोऽहं सर्वेषां तेषां मानपाल-भृत्यानां शृंखला-बन्धनानि भित्त्वा द्वार-रक्षकाणां शस्त्राणि चादाय मानपाल-शिविरं प्राविशम्। मानपालः किङ्करमुखात् मया रत्न-प्राप्ति-वार्तां मदीयं कुल-वृत्तं च सर्वमाकर्ण्य मम विक्रमेण हृष्टः मां भृशं सत्कृतवान्।

परेद्युः मत्तकालेन प्रेषिताः केचन पुरुषा मानपालमुपेत्यावदन्—'मन्त्रिन्, मत्तकाल-राज-शिविरं प्रविश्य ततश्च बहु-

धनमपहृत्य भवदीयाः सैनिका एतं कटकं प्राविशन् । अधुना अस्मद्राज्ञः तद्धनम् अर्पय, अस्माकं सैनिकाश्चापि विमोच्याः ।' इति ।

तेषां तद् वचनमाकर्ण्य रोषारुण-लोचनो मानपालो मन्त्री—'लाटपतिः कः, तेन मैत्री का, कश्च तस्य प्रभावः ?'—इति तान् अभर्त्सयत् ।

वीरकेतु-मन्त्रिणः मानपालस्य तानि अपमान-कराणि वचनानि निशम्य लाटाधिपतिः मत्तकालः अल्प-सैन्योऽपि स्वभुज-बले जात-गर्वः मानपाल-सैन्यमाक्रान्तवान् । अनेन उभयोः सैन्ययोः प्रारब्धं महद् युद्धम् । मया च मानपाल-पक्षः स्वीकृतः । तत्र च युद्धे मया महती रण-दक्षता, शौर्यं च प्रदर्शितम् । युध्यमानोऽहं स्वरथं मत्तकालस्य निकटं नीत्वा सहसा एकेनैव खड्गप्रहारेण तच्छिरः छिन्नवान् । अनेन मत्तकाल-सैन्यं प्रधावितुमारब्धम् । प्रधावतो बहून् सैनिकान् अहं अनुसृत्य खड्ग-प्रहारैः यम-सदनं प्रहितवान् ।

युद्धस्य समाप्तौ मानपाल-मुखात् मदीयं शौर्यवृत्तं श्रुत्वा संजात-विस्मयः वीरकेतुः वारशः मत्शौर्य-कृत्यानि प्रशंसन् मह्यं प्रभूतं द्रव्य-जातं मानपालानुमत्या स्वकन्यां च वामलोचनां भार्यारूपेणायच्छत् ।

तां वामलोचनाम् आदायाहं महाराज-पुरतः उपस्थितः । देव ! एतन्मे वृत्तम् ।

भुज-दण्ड-प्रतापेन कार्यं सिध्येद्धि दुष्करम् ।
सोमदत्तो यथा शूरो रमणी-रत्नमाप्तवान् ।।

अभ्यासः

(क) १—इस पाठ में से बहुव्रीहि-समस्त पदों को चुनो ।
२—आरब्धम् , उपस्थितः, प्रहितवान्—
इनसे वाक्य बनाओ ।

(ख) इनमें सन्धिच्छेद करो—
तच्छिरः, उपेत्य, तद्वनम् ।

(ग) सोमदत्त-कथा का संक्षिप्त वर्णन अपने शब्दों में करो ।

रावणस्य रण-प्रयाणम्—१

राक्षसः—(प्रविश्य ससंभ्रमम्) रामेण, रामेण—

रावणः—कथं कथं रामेण ! ब्रूहि ब्रूहि किं कृतं मनुज-तापसेन रामेण ?

राक्षसः—श्रोतुमर्हति महाराजः । तेन खलु—

उदार-सत्त्वेन महाबलेन
लङ्केश्वरं त्वामभिभूय शीघ्रम्
सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण
प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते ॥१॥

रावणः—आः ! दुरात्मन् ! समरभीरो !

देवाः सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ २ ॥
हा वत्स ! मेघनाद ! (इति मूर्छितः पतति)

राक्षसः——महाराज ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

रावणः——हा वत्स ! सर्वजगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !
हा वत्स ! वासवजिदानत-वैरि-चक्र !
हा वत्स ! वीर ! गुरु-वत्सल ! युद्ध-शौण्ड !
हा वत्स!मामिह विहाय गतोऽसि कस्मात्?॥३॥

(इति मोहमुपगतः)

राक्षसः——हा धिक् ! त्रैलोक्य-विजयी लंकेश्वर एतामवस्थां प्रापितो हतकेन विधिना । महाराज ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

रावणः——(समाश्वस्य) इदानीमनर्थ-हेतु-भूतया सीतया किमनया, त्रैलोक्य-विजय-विफलया चपलया श्रिया च ।

इदानीमपि निःस्नहो वत्सेनेन्द्रजिता विना ।
कष्टं कठोरहृदयो जीवत्येष दशाननः ॥४॥
(इति संतापात् पतति)

अभ्यासः

(क) १—राक्षसेन प्रविश्य किम् उक्तम् ?
२—तत् श्रुत्वा रावणस्य कीदृशी दशा जाता ?

३—चेतनां प्राप्य रावणः किमुक्तवान् ?

(ख) १—इनका विग्रह करो—

आनत-वैरि-चक्र, शुद्ध-शौण्ड, दशाननः ।

२—'अभिभूय' में उपसर्गरहित धातु का क्या अर्थ है ? भू के साथ, अनु, सम्, प्र, परा—उपसर्गों के लगने से अर्थ में क्या क्या परिवर्तन होता है, यह वाक्यों द्वारा बताओ।

(ग) सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते। इसकी क्रिया का वाच्य बदल कर वाक्य को फिर से लिखो।

रावणस्य रण-प्रयाणम्—२

रावणः——(राक्षसं प्रति) गच्छ भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

राक्षसः——यदाज्ञापयति महाराजः।

(निष्क्रम्य, प्रविश्य च)

जयतु महाराजः। एष हि रामः—

धनुषि निहित-बाणस्त्वामतिक्रम्य गर्वाद्
हरि-गण-परिवारो हास-संफुल्ल-नेत्रः।
रण-शिरसि सुतं ते पातयित्वा तु राजन्
अभिपतति हि लङ्कां सन्दिधक्षुर्यथैव॥५॥

(सहसोत्थाय सरोषम्)

क्वासौ? क्वासौ ?

(असिमुद्यम्य)

राक्षसः—महाराज ! अलमतिसाहसेन ।

रावणः—सीतायाः कारणेन बहवो भ्रातरः, सुताः, सुहृदश्च मे निहताः । तस्माद् अस्या हृदयं भित्त्वा कृष्टान्त्रमालालंकृतः खड्गाशनि-पातेन समनुजयुगलं सकल-वानर-कुलं ध्वंसयामि ।

राक्षसः—प्रसीदतु, प्रसीदतु महाराजः। अलमलमिदानीमनवरत-वृथा-प्रयासेन । स्त्री-वधो न कर्तव्यः ।

रावणः—यद्येवं स्यन्दनमानय ।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(निष्क्रम्य, प्रविश्य)

जयतु महाराजः । इदं स्यन्दनम् ।

समावृतं सुरैरद्य सीते द्रक्ष्यसि राघवम् ।
मम चापाच्च्युतैस्तीक्ष्णैर्बाणैराक्रान्तचेतसम् ।।६।।

(सत्वरं निष्क्रान्तः)

अभ्यासः

(क) १—प्रति और अलम् का प्रयोग वाक्यों में करो ।
२—आज्ञापयति, ध्वंसयामि, द्रक्ष्यसि—इन क्रियाओं के धातु, लकार, पुरुष और वचन बताओ ।

(ख) १—इनमें सन्धिच्छेद करो—

सन्दिघ्वत्तुर्यथैव, कृष्टान्त्र-मालालंकृतः, चापाच्च्युतैर्बाणैः।

२—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ—

हरि-गण-परिवारः, सकल-वानर-कुलम्, आक्रान्त-चेतसम्।

(ग) १—रामः किं कर्तुम् अभिपतति ?

२—रावणः किमर्थम् असिम् गृहीतवान् ?

३—'स्त्रीवधो न कर्तव्यः।' इति केन कं प्रति उक्तम् ?

पद्य-खण्डः

दान-माहात्म्यम्

ग्रासादपि तदर्धं च कस्मान्नो दीयतेऽर्थिषु ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥१॥
दानं भोगो नाशस्तिस्रः गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥२॥
यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि ॥३॥
आयास-शत-लब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः ।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥४॥
भवन्ति नरकाः पपात् पापं दारिद्र्य-संभवम् ।
दारिद्र्यमप्रदानेन तस्मात् दान-परो भवेत् ॥५॥

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदर-संस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ।।६।।
गौरवं प्राप्यते दानात न तु वित्तस्य सञ्चयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ।।७।।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्व-व्यसनानि हन्ति ।।८।।

तुरग-शत-सहस्रं गो-गजानाञ्च लक्षम् ।
कनक-रजत-पात्रं मेदिनीं सागरान्ताम् ।
विमल-कुल-वधूनां कोटि-कन्याश्च दद्यात्,
नहि नहि सममेतैरन्न-दानं प्रधानम् ।।९।।

देयं भो ह्यधने धनं सुकृतिभिर्यत् सञ्चितं सर्वदा,
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
आश्चर्यं मधुभोग-दान-रहितं नष्टं चिरात् सञ्चितम्,
निर्वेदादिति पाणि-पाद-युगलं घर्षन्त्यहो मक्षिकाः ।।१०।।

अभ्यासः

(क) १—विभवः, संभवः—इन दोनों में अर्थभेद बताओ।
इस अर्थभेद का कारण क्या है ?

२—'गरीयसः' विशेषण की अन्य अवस्थाओं के रूपों का वाक्यों में प्रयोग करो।

३—कस्मान्नो दीयतेऽर्थिषु ? इस वाक्य की क्रिया का वाक्य बदल कर वाक्य को फिर से लिखो।

(ख) तिस्रः, अम्भसाम् , पयोधीनाम् —इनके शब्द, विभक्ति और वचन लिखो।

(ग) इसी पाठ के आधार पर 'दान-माहात्म्य' पर एक निबन्ध हिन्दी में लिखो।

दुर्जन-निन्दा

नलिका-गतमपि कुटिलं

न भवति सरलं शुनः पुच्छम् ।

तद्वत् खल-जन-हृदयं

बोधितमपि नैव याति माधुर्यम् ॥१॥

गुणिनां गुणेषु सत्स्वपि

पिशुन-जनो दोषमात्रमादत्ते ।

पुष्पे फले विरागी

क्रमेलकः कण्टकौघमिव ॥२॥

वृथा ज्वलित-कोपाग्नेः परुषाक्षर-वादिनः ।

दुर्जनस्यौषधं नास्ति किञ्चिदन्यदनुत्तरात् ॥३॥

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥४॥

खलानां कण्टकानां वा द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानद्-मुखभंगो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥५॥

अहो ! प्रकृति-सादृश्यं श्लेष्मणो दुर्जनस्य च ।
मधुरैः कोपमायाति कटुकेनैव शाम्यति ॥६॥

खलो न साधुतां याति सद्भिः सम्बोधितोऽपि सन् ।
सरित्पूर-प्रपूर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते ॥७॥

अयः-पिण्ड इवोत्तप्ते खलानां हृदये क्षणात् ।
पतिता अपि नेक्ष्यन्ते गुणास्तोय-कणा इव ॥८॥

पाषाणो भिद्यते टङ्कैः वज्रं वज्रेण भिद्यते ।
सर्पोऽपि भिद्यते मन्त्रैर्दुष्टात्मा नैव भिद्यते ॥९॥

धूमः पयोधरपदं कथमप्यवाप्य,
वर्षाम्बुभिः शमयति ज्वलनस्य तेजः ।
दैवादवाप्य कलुष-प्रकृतिर्महत्त्वम्,
प्रायःस्वबन्धु-जनमेव तिरस्करोति ॥१०॥

संवर्धितोऽपि भुजगः पयसा न वश्यः,
तत्पालकानपि निहन्ति बलेन सिंहः ।
दुष्टः परैरुपकृतस्तदनिष्टकारी,
विश्वास-लेश इह नैव खले विधेयः ॥११॥

अभ्यासः

(क) १—इनमें सन्धिच्छेद करो—

सत्स्वपि, किंचिदन्यदनुत्तरात्, अयः-पिण्ड इवोत्तप्ते।

२—मधुरायते, भिद्यते, आदत्ते—इन क्रियापदों की विशेषतायें बताओ।

३—खलः सर्षप......न पश्यति—इस पद्य का कर्ता, कर्म तथा क्रिया बताओ।

(ख) इन समस्त पदों का विग्रह बताओ।

ज्वलित-कोपाग्नेः, दुष्टात्मा, कलुष-प्रकृतिः, परच्छिद्राणि।

(ग) १—कुत्ते की पूँछ और दुर्जन में क्या समानता है?

२—दुर्जनों से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए?

३—इनके भावार्थ बताओ—

सरित्पूर-प्रपूर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते।

आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।

कूट-पद्यानि

पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कमल-लोचने !
यदि दास्यसि नेच्छामि नो दास्यसि पिबाम्यहम् ।।१।।
समरे हेम-रेखाङ्कं बाणं मुञ्चति राघवे ।
स रावणोऽपि मुमुचे मध्ये रीतिधरं शरम् ।।२।।
विषं भुङ्क्ष्व महाराज ! स्वजनैः परिवारितः ।
विना केन विना नाभ्यां कृष्णाजिनमकण्टकम् ।।३।।

प्रहेलिकाः

एक-चक्षुर्न काकोयं बिलमिच्छिन्न पन्नगः ।
क्षीयते वर्धते चैव न समुद्रः न चन्द्रमाः।।१।।(सूची,सुई)

कृष्णानना न मार्जारी द्वि-जिह्वा न च सर्पिणी ।
पञ्च-भार्या न पाञ्चाली यो जानाति स पण्डितः ।।२।।
(लेखनी)

वृक्षाग्रवासी न च पक्षि-राज-
स्त्रिनेत्रधारी न च शूल-पाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्ध-योगी
जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः ।।३।।
(नारिकेलम्, नारियल)

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः ।
अमुखः स्फुट-वक्ता च यो जानाति स पण्डितः ।।४।।
(पत्रम्)

अभ्यासः

(क) १—यदि दास्यसि—इसमें सन्धिच्छेद करो।

२—मध्ये रीतिधरं शरम्—इससे 'शरीरम्' शब्द का बोध कैसे होता है ?

३—'कृष्णाजिनम्' से 'राज्यम्' पद का बोध कैसे होता है ?

(ख) पांचाली, पानीयम्, राघवः, पण्डितः, दूरगामी—इनमें प्रकृति और प्रत्ययों (तद्धित) को अलग-अलग करो ।

(ग) इन समस्त पदों के विग्रह करो—
पंच-भार्या, द्वि-जिह्वा, अपदः ।

इन्द्रिय-संयमः

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
एकैकमलमेतेषां विनाश-प्रतिपत्तये ॥१॥
शुचि-शष्पांकुराहारो विदूर-क्रमण-क्षमः ।
लुब्धकाद् गीत-लोभेन मृगो मृगयते वधम् ॥२॥
गिरीन्द्र-शिखराकारो लीलयोन्मूलित-द्रुमः ।
करिणी-प्रेम-संमोहाद् आलानं याति वारणः ॥३॥
स्निग्ध-दीप-शिखालोक-विलोभित-विलोचनः ।
मृत्युमृच्छत्यसन्देहात् पतंगः सहसा पतन् ॥४॥
दूरेऽपि च भवन् दृष्टेरगाध-सलिले चरन् ।
मीनस्तु सामिषं लोहमास्वादयति मृत्यवे ॥५॥

गन्ध-लुब्धो मधुकरो दानासव-पिपासया ।
अभ्येति सुख-सञ्चारां गज-कर्ण-झणज्झणाम् ।।६।।
एकैकशो विनिघ्नन्ति विषया विषसन्निभाः ।
क्षेमी नु स कथं वा स्याद् यः समं पञ्च सेवते ।।७।।
धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामात् सुख-फलोदयः ।
आत्मानं हन्ति तान् हत्वा युक्त्या यो न निषेवते ।।८।।
कामः क्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नरः ।।९।।
परां विनीतः समुपैति सेव्यताम्,
महीपतीनां विनयो विभूषणम् ।
प्रवृत्त-दानो मृदु-सञ्चरत्करः,
करीव भद्रो विनयेन शोभते ।।१०।।

अभ्यासः

(क) १—एकैकमलम्—इसमें अलम् का अर्थ और उसके साथ प्रयुक्त शब्द की विभक्ति बताओ।

२—'मृगयते' में किस धातु के साथ कौन लकार है ?

(ख) इसका भावार्थ बताओ—
प्रवृत्त-दानो...शोभते ।

(ग) १—इस पाठ का भावार्थ लिखो।

२—विषय कितने हैं ? किस-किस के वश में होकर किस-किस प्राणी का नाश होता है ?

भरतस्य शपथाः

सोऽमात्य-मध्ये भरतो जननीमभ्यकुत्सयत् ।
'राज्यं न कामये जातु मन्त्रये नापि मातरम् ॥१॥
वन-वासं न जानामि रामस्याहं महात्मनः ।
विवासनं च सौमित्रेः सीतायाश्च यथाभवत्' ॥२॥
तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः ।
कौशल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत् ॥३॥
'आगतः क्रूर-कार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं-दीर्घ दर्शिनम्' ॥४॥
एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा ।
कौशल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् ॥५॥

'आर्ये ! कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् ।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे॥६॥
कृत-शास्त्रानुगा बुद्धिर्माभूत्तस्य कदाचन ।
सत्य-सन्धः सतां श्रेष्ठः यस्यार्योऽनुमते गतः ॥७॥
कारयित्वा महत् कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥८॥
बलि-षड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥९॥
संग्रामे समुपोढे च शत्रु-पक्ष-भयङ्करे ।
पलायमानो वध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥१०॥
उभे सन्ध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्पयेत् ।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योनुमते गतः ॥११॥
तृषार्तं सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन् ।
यत्पापं लभते तत् स्याद् यस्यार्योनुमते गतः' ॥१२॥
एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तो नु पपात सः ।
विहीनां पति-पुत्राभ्यां कौशल्यां पार्थिवात्मजः॥१३॥

अभ्यासः

(क) १—भरत ने ये शपथ कब लिये ?
२—उभे सन्ध्ये—इस पद्य का क्या भाव है ?
(ख) इन शब्दों से उस समय की संस्कृति का कैसा ज्ञान होता है ?

(ग) १—इस पाठ में से णिजन्त क्रियाओं को चुनो।

२—इनके विग्रह करो—

क्रूर-कार्यायाः, सत्य-सन्धः, दुःखार्तः, अकल्मषम्

३—आगतः क्रूर-कार्यायाः········दीर्घ-दर्शनम्।

इस पद्य में से विशेषण-शब्दों को चुनो।

बुद्ध-वैराग्यम्

(१)

ततः कदाचिद् मृदु-शाद्वलानि
पुंस्कोकिलोन्नादित-पादपानि ।
शुश्राव पद्माकर-मण्डितानि
शीते निबद्धानि स काननानि ॥

(२)

श्रुत्वा ततः स्त्रीजन-वल्लभानाम्
मनोज्ञ-भावं पुर-काननाम् ।
वहिः प्रयाणाय चकार बुद्धि-
मन्तर्गृहे नाग इवावरुद्धः ॥

(३)

ततो नृपस्तस्य निशम्य भावं
पुत्राभिधानस्य मनोरथस्य ।
स्नेहस्य लक्ष्म्या यशसश्च योग्या–
माज्ञापयामास विहार-यात्राम् ॥

(४)

निवर्तयामास स राज-मार्गे
सम्पातमार्तस्य पृथग्जनस्य ।
माभूत् कुमारः सुकुमार-चित्तः
संविग्न-चेता इति मन्यमानः ॥

(५)

प्रत्यङ्ग-हीनान् विकलेन्द्रियांश्च
जीर्णातुरादीन् कृपणांश्च भिक्षून् ।
ततः समुत्सार्य परेण साम्ना
शोभां परां राजपथस्य चक्रुः ॥

(६)

अथो नरेन्द्रः सुतमागताश्रुः
शिरस्युपाघ्राय चिरं निरीक्ष्य ।
गच्छेति चाज्ञापयति स्म वाचा
स्नेहान्न चैनं मनसा मुमोच ॥

(७)

ततः स जाम्बूनद-भाण्ड-भृद्भि-
युक्तं चतुर्भिर्निभृतैस्तुरङ्गैः ।
अक्लीव-विद्युच्छुचि-रश्मिधारं
हिरण्मयं स्यन्दनमारुरोह ॥

(८)

पुरं तु तत्स्वर्गमिव प्रहृष्टं
शुद्धाधिवासाः समवेक्ष्य देवाः ।
जीर्णं नरं निर्ममिरे प्रयातुं
सञ्चोदनार्थं क्षितिपात्मजस्य ॥

अभ्यासः

(क) इनके अर्थ लिखो—
पुंस्कोकिलोन्नादित-पादपानि । अन्तर्गृहे नाग इवावरुद्धः । स्नेहान्न चैनं मनसा मुमोच ।

(ख) अथो नरेन्द्रः............मनसा मुमोच ।
इस पद्य का अन्वय करो ।

(ग) इनके विग्रह लिखो—
शुद्धाधिवासाः, अक्लीव-विद्युच्छुचि-रश्मिधारम्, पुत्राभिधानस्य, पुंस्कोकिलोन्नादित-पादपानि ।

बुद्ध-वैराग्यम्—२

(९)

ततः कुमारो जरयाभिभूतं
दृष्ट्वा नरेभ्यः पृथगाकृतिं तम्।
उवाच संग्राहकमागतास्थ-
स्तत्रैव निष्क्रम्य निविष्ट-दृष्टिः ॥

(१०)

'क एष भोः सूत ! नरोऽभ्युपेतः
केशैः सितैर्यष्टि-विषक्त-हस्तः ।
भ्रू-संवृताक्षः शिथिलानताङ्गः
किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छया ?' ॥

(११)

इत्येवमुक्तः स रथ-प्रणेता
निवेदयामास नृपात्मजाय--
नाशः स्मृतीनां रिपुरिन्द्रियाणाम्
एषा जरा नाम ययैष भग्नः' ।।

(१२)

इत्येवमुक्ते चलितः स किञ्चित्
राजात्मजः सूतमिदं बभाषे—
'किमेष दोषो भविता ममापी'–
त्यस्मै ततः सारथिरभ्युवाच—

(१३)

'आयुष्मतोऽप्येष वयः-प्रकर्षात्
निस्संशयं कालवशेन भावी ।
एवं जरां रूप-विनाशयित्रीं
जानाति चैवेच्छति जीवलोकः' ।।

(१४)

निःश्वस्य दीर्घं स शिरः प्रकम्प्य
तस्मिंश्च जीर्णे विनिवेश्य चक्षुः ।
तां चैव दृष्ट्वा जनतां सहर्षां
वाक्यं स संविग्नमिदं जगाद ।।

(१५)

'इयं जरा हन्ति सनिर्विशेषं
स्मृतिं च रूपं च पराक्रमं च।
न चैव संवेगमुपैति लोकः
प्रत्यक्षतोऽपीदृशमीक्षमाणः' ॥

(१६)

'एवं गते सूत ! निवर्तयाश्वान्
शीघ्रं गृहाण्येव भवान् प्रयातु।
उद्यान-भूमौ हि कुतो रतिर्मे
जरा-भये चेतसि वर्तमाने' ॥

(१७)

अथाज्ञया भर्तृ-सुतस्य तस्य
निवर्तयामास रथं नियन्ता।
ततः कुमारो भवनं तदेव
चिन्ता-वशः शून्यमिव प्रपेदे ॥

अभ्यासः

(क) १—मार्ग में किन-किन दृश्यों को देखकर बुद्ध के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ ?

२—वृद्ध पुरुष को देखकर बुद्ध और उसके सारथी के मध्य में क्या बातचीत हुई ?

(ख) १—क एष, नरोऽभ्युपेतः, यदृच्छया—इनमें सन्धिच्छेद करो।

२—एषा जरा नाम ययैष भग्नः। इसकी क्रिया का वाच्य बदलो।

३—रथ-प्रणेता, आयुष्मतः, चक्षुः—इनके शब्द और विभक्ति बताकर इनके किसी एक रूप का वाक्यों में प्रयोग करो।

भर्तृहरेः पद्यानि

(१)

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्न-विहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तम-जना न परित्यजन्ति ॥

(२)

रे रे चातक ! सावधान-मनसा मित्र ! क्षणं श्रूयताम्,
अम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः !
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥

(३)

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनिता यद्यस्ति किं पातकैः ?
सत्यं चेत्तपसा च किं ? शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ?
सौजन्यं यदि किं निजैः ? सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः ?
सद्विद्या यदि किं धनैः ? अपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ?

(४)

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी-पत्र-स्थितं जायते ।
स्वात्यां सागर-शुक्ति-मध्य पतितं तन्मौक्तिकं राजते
प्रायेणाधम-मध्यमोत्तम-गुणाः संसर्गतो देहिनाम् ।'

(५)

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूमि-विलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।

(६)

मनसि वचसि काये पुण्य-पीयूष-पूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकार-श्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
पर-गुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निज-हृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

(७)

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।

(८)

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः,
सममिह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।।

(९)

यावत् स्वस्थमिदं शरीरमखिलं यावज्जरा दूरतः,
यावच्चेन्द्रिय-शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने च कूप-खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ?।।

(१०)

आयुर्वर्ष-शतं नृणां परिमितं, रात्रौ तदर्धं गतम्,
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्व-वृद्धत्वयोः ।
शेषं व्याधि-वियोग-दुःख-सहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारि-तरंग-चञ्चलतरे सौख्यं कुतःप्राणिनाम्?।।

अभ्यासः

(क) इस पाठ के प्रत्येक पद्य का भाव लिखो ।

(ख) सन्तः, कियन्तः, वचः, मृत्युना, बहवः, एतादृशः, देहिनाम्—इन सात रूपों के शब्दों की सातों विभक्तियों के रूप क्रमशः लिखो ।

(ग) इनके विग्रह बताओ ।

सागर-शुक्ति-मध्य-पतितम्, पुष्प-पीयूष-पूर्णाः, निर्विशेषः, वारि-तरंग-चञ्चलतरे ।

परिशिष्ट

संस्कृत-भाषा के मुख्य और विशेष अंग

किसी भी भाषा का कलेवर शब्दों से बनता है, और शब्द अक्षरों से बनते हैं। अक्षर वह अखंड ध्वनि है जिसका विभाजन आगे नहीं हो सकता।

संस्कृत-भाषा के ४६ अक्षर हैं—१३ स्वर (ह्रस्व और दीर्घ), ३३ व्यंजन तथा अनुस्वार और विसर्ग।

इन्हीं अक्षरों के जोड़-तोड़ से शब्दों की उत्पत्ति होती है। शब्दों की संख्या अनन्त है क्योंकि भाषाओं, विशेषतः प्रचलित भाषाओं, से नये-नये शब्दों का निर्माण नित्य होता रहता है। संस्कृत की धातुओं की संख्या चाहे परिमित हो, परन्तु इनके साथ लकार-विभक्तियों, कृदन्त और तद्धित-प्रत्ययों के योग से अनन्त नये-से-नये शब्दों की रचना हो सकती है। संस्कृत-भाषा की यही विशेषता अनुपम है।

संस्कृत-भाषा के शब्दों की रूपावली बहुत व्यापक है। इसके प्रत्येक शब्द के अनेक रूप बनते हैं। संज्ञाओं, सर्वनामों तथा विशेषणों के अन्यान्य सुप्-विभक्तियों में और धातुओं के अन्यान्य तिङ्-विभक्तियों में अनेक रूप बनते हैं। यह बात और भाषाओं में नहीं है और यदि है भी तो इतनी सीमा तक नहीं है। यह इसकी दूसरी विशेषता है।

संस्कृत में सन्धियों का प्रयोग बहुत अधिक होता है। दूसरी भाषाओं में अन्यान्य अक्षरों की सन्धि नहीं होती और यदि होती है तो उन्हीं भाषाओं के शब्दों में होती है जो संस्कृत-जात हैं। यह इसकी तीसरी विशेषता है।

समस्त शब्दों का प्रयोग संस्कृत की चौथी विशेषता है। समास-

प्रकरण एक बहुत जटिल विषय है। जहाँ दूसरी भाषाओं के समस्त शब्द दो-दो, तीन-तीन शब्दों तक ही सीमित रहते हैं, वहाँ संस्कृत में समस्त शब्द बीस-बीस, तीस-तीस अथवा इनसे भी अधिक शब्दों के मेल से बने बहुत मिलते हैं।

धातुओं से कृत्-प्रत्यय लगकर बने हुए कृदन्त शब्द और संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण आदि से तद्धित-प्रत्यय लगकर बने हुए अनन्त तद्धितान्त शब्द संस्कृत के अतिरिक्त और भाषाओं में बहुत कम मिलते हैं।

कई ऐसे पद भी हैं जिनका रूप स्थिर रहता है, विभक्ति-प्रयोग आदि के कारण उनके कई भिन्न-भिन्न रूप नहीं होते। इन्हें अव्यय कहते हैं। अव्ययों में कुछ ऐसे-ऐसे शब्द होते हैं जिनका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता, उन्हें उपसर्ग कहते हैं। उपसर्गों का प्रयोग स्वतन्त्र नहीं होता। ये किसी दूसरे शब्द के पूर्व जुड़कर ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—अनुभव, प्रभव, संभव, पराभव; विचार, प्रचार, संचार, दुराचार। इनमें भव और चार के पूर्व अन्यान्य उपसर्ग जुड़े हुए हैं।

उपसर्गों से अन्य अव्ययों का प्रयोग स्वतन्त्र होता है। जैसे—च, वा, पुनः, सदा आदि। इनमें कुछ अव्यय ऐसे हैं जिनके प्रयोग से उस शब्द में विशेष विभक्ति आती है जिसका उनसे सम्बन्ध है। इस विभक्ति को उपपद विभक्ति कहते हैं। जैसे—सह, अनु, धिक्।

१—रूप-रचना

इस परिमित स्थान में रूप-रचना पर कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके लिए किसी प्रमाणित व्याकरण पुस्तक का अनुशीलन करना होगा। संस्कृत में संज्ञा, सर्वनाम और विशेषणों की सात विभक्तियों में और धातुओं की दस लकारों में रूप-रचना होती है।

२—सन्धिः

सन्धि-ज्ञान संस्कृत-भाषा के ज्ञान के लिए अत्यावश्यक है। जहाँ पर शब्दों के अन्दर सन्धि आन्तरिक होती है वहाँ एक शब्द के अन्तिम वर्ण की दूसरे शब्द के आदिम वर्ण से सन्धि वाह्य होती है। प्रत्येक शब्द की वाह्य सन्धि को तोड़कर ही किसी वाक्य के अर्थ का ज्ञान हो सकता है। अधिक ध्यान देने की बात तो यह है कि दो अक्षरों की सन्धि से उनमें (कभी एक वर्ण में कभी दो में) कोई न कोई विकार हो जाता है। यही कारण है कि इस पुस्तक में सन्धि-ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है।

पहले कुछ पाठों में वाह्य सन्धि का प्रयोग नहीं किया गया। उसके बाद के पाठों में सन्धि का क्रम से प्रयोग किया है। जहाँ जिस सन्धि का प्रथम प्रयोग हुआ है उसके नीचे उसके सम्बन्ध का नियम दिया है।

जहाँ आन्तरिक सन्धि का होना आवश्यक है वहाँ वाह्य सन्धि करना आवश्यक नहीं है, परन्तु इसका प्रयोग सब ग्रन्थों में होता है। समस्त पदों में वाह्य सन्धि भी आवश्यक है। जैसे—'नरोत्तम' यह समस्त पद है। इसे हम सदा नरोत्तम ही कहेंगे या लिखेंगे, नर-उत्तम नहीं कहेंगे। परन्तु 'नरोत्तमो गतः।' को हम 'नरोत्तमः गतः।' भी कह सकते हैं।

शब्दों के निर्माण में आन्तरिक सन्धि होती है। यह सन्धि-प्रयोग अनिवार्य है। जैसे—गो + ओस्—इसे पूर्ण रूप देने में गव् + ओस् = गवोः अवश्य कहना होगा।

सन्धि के विषय में कहा गया है—

संहितैक-पदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

संहिता (सन्धि) एक पद के अन्दर, उपसर्ग और धातु में और

समास में आवश्यक है, परन्तु वाक्य के अन्यान्य पदों में इसका करना वक्ता की इच्छा पर निर्भर है।

सन्धि तीन प्रकार की है—

स्वर-सन्धि, हल्-सन्धि, विसर्ग-सन्धि।

१—स्वर के स्वर से मेल को स्वर-सन्धि,

२—हल् के स्वर वा हल् से मेल को हल्-सन्धि,

३—विसर्ग के स्वर वा हल् से मेल को विसर्ग-सन्धि कहते हैं।

१—स्वर-सन्धिः

स्वर-सन्धि के पाँच भेद हैं—दीर्घ, यण्, गुण, वृद्धि, अयादि।

(क) दो समान-रूप अ, इ, उ, ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) के मेल से दीर्घ-सन्धि होती है। जैसे—दया + अर्णवः = दयार्णवः, राम + आज्ञा = रामाज्ञा, श्री + इच्छा = श्रीच्छा, भानु + उदयः = भानूदयः, पितृ + ऋणम् = पितृणम्।

(ख) इ, उ, ऋ, (ह्रस्व वा दीर्घ) वा लृ के परे यदि कोई असमान स्वर हो तो इ को य्, उ को व्, ऋ को र् और लृ को ल् होता है। जैसे—हरि + आज्ञा = हर्याज्ञा, प्रभु + ईच्छा = प्रभ्विच्छा, मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा, लृ + आकृतिः = लाकृतिः। (इस सन्धि को यण्-सन्धि कहते हैं।)

(ग) १—(ह्रस्व वा दीर्घ) अ के परे यदि इ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और इ के स्थान पर ए होता है। जैसे—राज + इन्द्रः = राजेन्द्रः, धन + ईशः = धनेशः।

२—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि उ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और उ के स्थान पर ओ हो जाता है। जैसे—सूर्य + उदयः = सूर्योदयः, महा + उपकारः = महोपकारः।

३—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और ऋ के स्थान पर अर् हो जाता है। जैसे—महा + ऋषिः = महर्षिः, तव + ऋणम् = तवर्णम् ।

४—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि लृ हो तो अ और लृ के स्थान पर अल् होता है। जैसे—तव + लृकारः = तवल्कारः। इस सन्धि का प्रयोग बहुत कम होता है। (इस सन्धि को गुण-सन्धि कहते हैं)।

(घ) १—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ए वा ऐ हो तो अ और ए या ऐ के स्थान पर ऐ होता है। जैसे—एक + एकम् = एकैकम्, मम + ऐश्वर्यम् = ममैश्वर्यम् ।

२—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ओ वा औ हो तो अ और ओ या औ के स्थान पर औ हो जाता है। जैसे—तव + ओष्ठः = तवौष्ठः, चित्त + औदार्यम् = चित्तौदार्यम्। (इस सन्धि को वृद्धि-सन्धि कहते हैं।)

(ङ) ए के परे यदि कोई स्वर हो उसे अय्,
ओ के परे यदि कोई स्वर हो तो उसे अव्,
ऐ के परे यदि कोई स्वर हो तो उसे आय्,
औ के परे यदि कोई स्वर हो तो उसे आव् होता है।

जैसे—शे – अनम् = शयनम्, भो + अति = भवति, नै + अकः = नायकः, पौ + अकः = पावकः।

अपवादः—पदान्त ए वा ओ के परे यदि अ हो तो अ का पूर्वरूप हो जाता है—अर्थात् अ नहीं रहता। जैसे—हरे + अत्र = हरेऽत्र, देवो + अब्रवीत् = देवोऽब्रवीत् ।

अ के स्थान पर 'ऽ' चिह्न कर देते हैं। इसे अवग्रह कहते हैं।

२—हल्-सन्धि

हल्-सन्धि के अनुसार कई विकार होते हैं। यहाँ पर केवल कुछ अत्युपयोगी ही दिये जाते हैं।

(क) पदान्त क्, ट्, त्, प् के परे यदि कोई स्वर हो या किसी वर्ग का तृतीय, चतुर्थ वर्ण या य्, र्, ल्, व्, ह् में से कोई वर्ण हो तो क् को ग्, ट्, को ड्, त् को द् और प् को ब् (अपने वर्ग का तृतीय वर्ण) हो जाता है। जैसे— प्राक्+एव=प्रागेव, सम्राट्+गच्छति=सम्राड् गच्छति, दूरात्+आगच्छति=दूरादागच्छति, अप्+जः=अब्जः।

(ख) पदान्त क्, ट्, त्, प् के परे यदि कोई अनुनासिक वर्ण (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) हो तो उसे अपने वर्ण का पाँचवाँ वर्ण (क् को ङ्, ट् को ण्, त् को न्, प् को म्) हो जाता है विकल्प से। जहाँ पाँचवाँ वर्ण नहीं होता वहाँ तीसरा होता है। जैसे—प्राक्–नमनम्=प्राङ्नमनम् —प्राग्नमनम्, सम्राट्+नमति=सम्राण्नमति—सम्राड्नमति, तत्+मम...तन्मम—तद्मम, अप्+मानः=अम्मानः—अब्मानः।

(ग) (१)—त् वा न् के परे ल हो तो त् और न् को ल् हो जाता है और न् के ल् से पूर्व स्वर पर ँ (चन्द्रविन्दु) हो जाता है। जैसे— तत्–लाभः=तल्लाभः, महान्+लाभः=महाँल्लाभः।

(२)—त् से परे श् हो तो त् को च् और श् को छ् हो जाता है। जैसे— तत्+श्रुत्वा=तच्छ्रुत्वा।

(घ) किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे वा चौथे वर्ण से परे यदि ह हो तो ह को पूर्व वर्ण के वर्ग का चौथा वर्ण विकल्प से और पूर्व वर्ण को उसी वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है। जैसे—वाक्+हरिः= वाग्घरिः—वाग्हरिः, सम्राट्+हतः=सम्राड्ढतः–सम्राड्हतः, तत्+ हननम्=तद्धननम्—तद्हननम्, अप्+हरणम्=अब्भरणम्–अब्-हरणम्।

(ङ) पदान्त न् से परे यदि च् या छ् हो तो न् को अनुस्वार और श् यदि ट् या ठ् हो तो न् को अनुस्वार और ष् और यदि त् या थ् हो तो न् को अनुस्वार और स् हो जाता है। जैसे—कस्मिन्+चित्= कस्मिंश्चित, हसन्+चलति=हसंश्चलति, पाशान्+छिनत्ति=

पाशांश्छिनत्ति, हसन् + टीकते = हसंष्टीकते, पतन् + तरुः = पतंस्तरुः, क्षिपन् + थुत्कारम् = क्षिपंस्थुत्कारम् ।

(च) तवर्ग या स् से पहले या परे चवर्ग या श् हो तो तवर्ग को क्रमशः चवर्ग और स् को श् हो जाता है। जैसे—सत् + चित् = सच्चित्, याच् + ना = याच्ञा, धावन् + शशः = धावंश्छशः, तान् + जयति = ताञ्जयति ।

(छ) न् से पूर्व कोई ह्रस्व स्वर हो और परे कोई स्वर हो तो न् को द्वित्व (दो न्) हो जाता है। जैसे—धावन् + अश्वः = धावन्नश्वः ।

(ज) (१)—छ् से पूर्व ह्रस्व स्वर हो तो छ् से पूर्व च् (च्छ) जोड़ा जाता है। जैसे—वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया ।

(२)—पदान्त दीर्घ स्वर से परे छ हो तो छ् से पहले च् विकल्प से जोड़ा जाता है। जैसे—लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीछाया-लक्ष्मीच्छाया ।

(झ) (१)—पदान्त म् से परे य र ल व श ष स ह में से कोई वर्ण हो तो म् को नित्य अनुस्वार होता है। जैसे—रामम् + वदति = रामं वदति, जलम् + स्रवति = जलं स्रवति ।

(२)—पदान्त म् से परे यदि कोई वर्गीय वर्ण हो तो म् को अनुस्वार या परले के वर्ण के वर्ग का पाँचवाँ वर्ण हो जाता है। जैसे—किम् + करोति = किङ्करोति—किंकरोति । धनम् + ददाति = धनन्ददाति—धनं ददाति ।

३—विसर्ग-सन्धिः

विसर्ग में प्रायः ये विकार होते हैं—

१—विसर्ग-लोप,

२—विसर्ग को उ,

३—विसर्ग को र्,

४—विसर्ग को स्, ष्, श् ।

१—(क) विसर्ग के पूर्व यदि अ हो और परे अ-भिन्न कोई स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। (विसर्ग का लोप होने पर फिर कोई सन्धि नहीं होती)। जैसे—रामः+उवाच=राम उवाच, अतः+एव=अतएव।

(ख) विसर्ग के पूर्व यदि आ हो और परे अ-भिन्न कोई स्वर, किसी वर्ग के दूसरे, तीसरे और चौथे वर्णों में से कोई वर्ण या य, र, ल, व, ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे—देवाः+ऊचुः=देवा ऊचुः, जनाः+इच्छन्ति=जना इच्छन्ति, कन्याः+लज्जन्ते=कन्या लज्जन्ते।

(ग) सः और एषः के विसर्ग का लोप हो जाता है यदि परे अ-भिन्न कोई वर्ण हो। जैसे—सः+नृपतिः=स नृपतिः, सः+आह=स आह।

(घ) भोः के विसर्ग का लोप हो जाता है यदि परे कोई स्वर या वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्ण में से कोई वर्ण या य र ल व ह में से कोई वर्ण हो। भोः+राम=भो राम, भोः+उमापते=भो उमापते। विसर्ग का लोप होने पर फिर कोई सन्धि नहीं होती।

२—विसर्ग के पूर्व यदि अ हो और परे अ या वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्णों में से कोई वर्ण या य र ल व ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को उ हो जाता है। जैसे—देवः+अवदत्=देव उ अवदत् (उ और उसके पूर्ववर्ती अ को गुण ओ हो जाता है) देवो अवदत् (पदान्त स्वर से परे अ को पूर्वरूप हो जाता है) देवोऽवदत्। रामः+वदति=रामो वदति।

३—विसर्ग के पूर्व यदि कोई अ-आ-भिन्न स्वर हो और परे कोई स्वर, वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्णों में से कोई वर्ण या य र ल व ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को र् हो जाता है। जैसे—हरिः+आह=हरिराह, अग्निः+ज्वलति=अग्निर्ज्वलति।

४—(क) विसर्ग के परे यदि च् वा छ् हो तो विसर्ग को श्,
विसर्ग के परे यदि ट् वा ठ् हो तो विसर्ग को ष्,
विसर्ग के परे यदि त् वा थ् हो तो विसर्ग को स् होता है।

जैसे—हरिः + चलति = हरिश्चलति, धावितः + छागः = धावितश्छागः, धनुः + टंकारः = धनुष्टंकारः। रामः + तरति = रामस्तरति, हरिः + तृषितः = हरिस्तृषितः।

(ख) विसर्ग के परे श् हो तो विसर्ग को विकल्प से श्,
विसर्ग के परे ष् हो तो विसर्ग को विकल्प से ष्,
विसर्ग के परे स् हो तो विसर्ग को विकल्प से स् हो जाता है।

जैसे—अनित्यः संसारः = अनित्यस्संसारः—अनित्यः संसारः।
दिवसः + षष्ठः = दिवसष्षष्ठः—दिवसः षष्ठः।
प्रथमः + सर्गः = प्रथमस्सर्गः—प्रथमः सर्गः।

समास

जब एक से अधिक पद परस्पर मिलकर एक-से बन जाय तो उसको समस्त पद कहते हैं।

समास उन्हीं पदों का होता है, जिनमें परस्पर संबध होता है। समास होने पर प्रत्येक पद के अन्त की विभक्ति का लोप हो जाता है और समस्त पद के अन्त में केवल उचित विभक्ति आती है। समास में प्राप्य सन्धि का होना अनिवार्य है।

समास के छै भेद होते हैं—

तत्पुरुष-समास, द्वन्द्व-समास, बहुव्रीहि-समास, कर्मधारय-समास, द्विगु-समास, अव्ययीभाव-समास।

१—तत्पुरुष-समास

जब पूर्व पद में प्रथमा-भिन्न कोई विभक्ति हो और उत्तर पद में कोई प्रथमान्त संज्ञा-शब्द हो तो उनमें जो समास होता है उसे तत्पुरुष-समास कहते हैं। तत्पुरुष-समास प्रायः दो पदों में होता है।

तत्पुरुष-समास के छै भेद हैं—

द्वितीया-तत्पुरुष	तृतीया-तत्पुरुष
चतुर्थी-तत्पुरुष	पंचमी-तत्पुरुष
षष्ठी-तत्पुरुष	सप्तमी-तत्पुरुष

जैसे—गृहम्+गतः=गृहगतः, असिना+छिन्नः=असिच्छिन्नः
देवेभ्यः+बलिः=देवबलिः, धर्मात्+अपेतः=धर्मापेतः,
राज्ञः+पुरुषः=राजपुरुषः, वने+जातः=वनजातः,

नञ्-तत्पुरुष

नञ् (अव्यय 'नहीं') यदि किसी पद से समस्त हो तो उसे नञ्-तत्पुरुष कहते हैं।

किसी स्वर से पूर्व न को अन् और किसी व्यंजन से पूर्व न को अ हो जाता है। जैसे—न अश्वः=अनश्वः, न सत्=असत्।

२—द्वन्द्व-समास

यदि एक से अधिक प्रथमान्त पद 'च' से जुड़े हों तो उनके समास को द्वन्द्व समास कहते हैं।

समस्त पद यदि दो प्रथमान्त पदों से बना हो तो उसके अन्त में द्विवचन अन्यथा बहुवचन आता है। जैसे—रामः च कृष्णः च= रामकृष्णौ, रामः च भरतः च शत्रुघ्नः च=राम-भरत-शत्रुघ्नाः, गजाः च अश्वाः च=गजाश्वाः।

३—बहुव्रीहि-समास

बहुव्रीहि-समास में पूर्व पद प्रायः विशेषण होता है और उत्तर पद विशेष्य।

इसके विग्रह में यत् सर्वनाम के प्रथमा से भिन्न किसी रूप के प्रयोग की आवश्यकता रहती है।

बहुव्रीहि समस्त पद विशेषण होता है।

जैसे—अर्जितं धनं येन, सः = अर्जितधनः, उपहृताः पशवः यस्मै, सः = उपहृतपशुः, निर्गतं जलं यस्मात्, सः = निर्गतजलः, मृतः पुत्रः यस्य, सः = मृतपुत्रः, विद्यमानं जलं यस्मिन्, तत् = विद्यमानजलम्।

४—कर्मधारय-समास

कर्मधारय-समास में पूर्व पद विशेषण और उत्तर पद विशेष्य (संज्ञा) होता है।

कर्मधारय समस्त पद संज्ञापद होता है (यही इसकी बहुव्रीहि से विशेषता है)। जैसे—कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः, शीतं जलम् = शीत-जलम्, महान् पुरुषः = महापुरुषः (समास में महान् को महा हो जाता है।), महादेवः, महादेवी।

५—द्विगु-समास

द्विगु-समास में पूर्व पद संख्यावाचक और उत्तर पद प्रथमान्त संज्ञापद होता है।

द्विगु समष्टि (समाहार) अर्थ में आता है। इसके अन्त में केवल नपुंसक-एकवचन ही आता है। कभी-कभी ई प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग भी आता है। जैसे—चतुर्णां युगानां समाहारः = चतुर्युगम्, नवानां रात्रीणां समाहारः = नवरात्रम्। त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी, शतस्य अब्दानां समाहारः = शताब्दी।

६—अव्ययीभाव-समास

अव्ययीभाव-समास में पूर्व पद अव्यय होता है और समस्त पद भी अव्यय बन जाता है। जैसे—कृष्णस्य समीपम् = उपकृष्णम्, अहनि अहनि = प्रत्यहम्, मक्षिकाणाम् अभावः = निर्मक्षिकम्। (अव्ययीभाव के

विग्रह में किसी उपसर्ग या अव्यय के स्थान पर उसका अर्थ प्रकट करने वाला कोई शब्द और रखा जाता है ।)

कृदन्त

मुख्य कृत्-प्रत्यय क्त (त), क्तवत् (तवत्), क्त्वा (त्वा), तुम्, तव्य तथा अनीय हैं ।

क्त—गतः, हतः, पतितः, भूतः ।

क्तवत्—गतवान्, हतवान्, पतितवान् ।

क्त्वा—गत्वा, हत्वा, पतित्वा, भूत्वा ।

तुम्—गन्तुम्, हन्तुम्, पतितुम्, भवितुम् ।

तव्य—गन्तव्यम्, हन्तव्यम्, पतितव्यम्, भवितव्यम् ।

अनीय—गमनीयम्, हननीयम्, पतनीयम्, भवनीयम् ।

इनमें से त्वा-अन्त और तुम्-अन्त के अतिरिक्त जो शेष कृदन्त हैं, उनकी रूपावली तीनों लिङ्गों में होती है । जैसे—

क्त—गतः (पु०), गता (स्त्री०), गतम् (नपुं०) ।

क्तवत्—गतवान् (पु०), गतवती (स्त्री०), गतवत् (नपुं०)।

क्त-अन्त, क्तवत्-अन्त, तव्य-अन्त और अनीय-अन्त पदों का प्रयोग क्रिया की तरह और विशेषण की तरह भी होता है ।

जैसे—रामः गृहं गतः (क्रिया); गतं रामम् आह्वाय । (वि०)
रामेण रावणः हतः (क्रि० कर्मवा०); हते रावणे सर्वे प्रासीदन् । (वि०)
गृहात् बालकः पतितवान् (क्रि०); गृहात् पतितवन्तं बालकं स नरः अरक्षत् । (वि०)
अद्यैव रावणः हन्तव्यः (हननीयः) (क्रि० कर्म-वा०); मया हन्तव्यं एतं नरं को रक्षितुम् क्षमः । (वि०)

क्त्वा—रावणं हत्वा रामः प्रतिनिवृत्तः ।

तुम्—रावणं हन्तुं रामः प्रतस्थे ।

तद्धित

तद्धित प्रत्ययों से अनेकों शब्द अनेकों अर्थों में बनते हैं। कई प्रत्ययों के लगाने पर शब्दों में कुछ परिवर्तन हो जाते हैं जिनमें पूर्व स्वर में वृद्धि विशेष है।

अ—वसुदेवस्य अपत्यम् = वासुदेवः, रघोः अपत्यम् = राघवः, यादवः।
इ—दशरथस्य अपत्यं = दाशरथिः, मारुतिः।
एय—गङ्गया अपत्यम् = गाङ्गेयः, कौन्तेयः।
अ—प्रत्यय बहुत अर्थों में आता है। जैसेः—
सम्बन्ध—देवस्य अयम् = दैवः, नैशः।
स्वामी—पृथिव्याः स्वामी = पार्थिवः, पांचालः।
अध्ययन—व्याकरणम् अधीते = वैयाकरणः।
भाव—कुमारस्य भावः = कौमारम्, शैशवम्।
(अ से पूर्व शब्द के प्रथम स्वर में वृद्धि होती है)

इक—मासिकम्, साप्ताहिकम्, वार्षिकम्, दैनिकम्, नाविकः, नैयायिकः, नास्तिकः।
ईन—ग्रामीणः, नवीनः, कुलीनः, प्राचीनः।
ईय—भवदीयः, पाणिनीयः, स्वकीयः।
तन—सनातनः, पुरातनः, नूतनः।
ता—जनता, मृदुता, बन्धुता।
त्व—मृदुत्वम्, पुरुषत्वम्।
मय—हिरण्मयः, मृण्मयः।
इत—पुष्पितः, फलितः, पण्डितः, मूर्छितः।
इन्—दण्डिन्-दण्डी, अर्थी, सुखी।
मत्—बुद्धिमत्-बुद्धिमान्, मतिमान।
वत्—धनवत्-धनवान्, गुणवान्।

कई अव्यय तद्धितों के योग से बनते हैं।

तस (तः)—यतः, ततः, अतः।

त्र—यत्र, कुत्र, अत्र।

था—यथा, तथा।

दा—यदा, कदा, तदा।

अव्यय

अव्ययों में से कुछ अव्यय उपसर्ग होते हैं। वे किसी अन्य शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होते हैं।

उपसर्ग-भिन्न अव्ययों का प्रयोग स्वतन्त्र होता है। ये—अद्य, अपि, इति, एव, क्व, तथा, ननु, न, वा, मुहुः, यथा, यत्र, तत्र, तदा, तावत्, यदि, तर्हि, इदानीम्, भृशम्, खलु—आदि अनेक हैं।

उपसर्ग

उपसर्ग किसी शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होकर व्यवहृत होते हैं। ये स्वतन्त्र प्रयुक्त नहीं होते। जिन शब्दों के पूर्व में ये आते हैं उनके अर्थ में कुछ भेद हो जाता है।

जैसे— कृ (कार) के पूर्व सम् लगने से संस्कार (सुधार), अप लगने से अपकार (बुराई), वि लगने से विकार (परिवर्तन), प्र लगने से प्रकार (भेद), आ लगने से आकार (शक्ल), बनते हैं। इनमें उपसर्ग के कारण एक ही 'कार' में अर्थ-भेद हो गया है।

कुछ धातु और उपसर्ग

आप्—(पाना)—वि+आप् (व्याप्) फैलना, सम्+आप् (समाप) अन्त होना, प्र+आप् (प्राप्) पहुँचना।

ईक्ष (देखना)—अनु+अक्ष् (अन्वीक्ष्) खोजना, अप+ईक्ष् (अपेक्ष्) आशा करना, परि+ईक्ष् (परीक्ष्)इम्तहान लेना, उप+ईक्ष् (उपेक्ष्) परवाह न करना।

गम् (जाना),—अधिगम्—पाना, अवगम्—जानना, उपगम्—पहुँचना।

ग्रह् (पकड़ना)—अनुग्रह्—दया करना, प्रतिग्रह्—दान लेना, विग्रह्—लड़ना, संग्रह्—इकट्ठा करना।

ज्ञा (जानना)—अनुज्ञा—इजाजत देना, अभिज्ञा—पहचानना, अवज्ञा—तिरस्कार करना, प्रतिज्ञा—प्रण करना।

भू (होना)—अनुभू—अनुभव करना, परिभू—तिरस्कार करना, प्रभू—समर्थ होना, संभू—उत्पन्न होना।

हृ (हरना)—अनुहृ—नकल करना, आहृ—भोजन करना, लाना।

उद्‌हृ (दद्धृ)—निकालना, संहृ—मारना, प्रहृ—चोट करना, विहृ—घूमना।

इस प्रकार उपसर्गों के योग से अनेकों शब्दों की सृष्टि होती है।

कुछ अव्ययों के साथ अन्यान्य विभक्तियों का प्रयोग

अव्ययों में से कुछ ऐसे अव्यय हैं जिनके साथ किसी न किसी नियत विभक्ति का प्रयोग होता है।

विभक्ति दो प्रकार की है—कारक विभक्ति और उपपद विभक्ति। क्रिया के सम्बन्ध से जो विभक्ति आती है, उसे कारक विभक्ति कहते हैं और किसी पद (अव्यय अथवा किसी और पद) के प्रयोग से जो विभक्ति होती है उसे उपपद विभक्ति कहते हैं।

इस प्रकार के अव्यय बहुत हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये गये हैं—

इनके साथ द्वितीया का प्रयोग होता है—

उभयतः (दोनों ओर)—उभयतः कृष्णं गोपालास्तिष्ठन्ति।
सर्वतः (चारों ओर)—सर्वतः इमं प्रदेशं पर्वतः वर्तन्ते।
धिक् (धिक्कार) धिक् दुष्टान् तान् ये परान् क्लेशयन्ति।

इनके साथ तृतीया का प्रयोग होता है—

सह (साथ)--रामेण सह जानकी वनं गता ।

इसी अर्थ के साकम्, सार्धम्, समम् के साथ भी तृतीया आती है ।

किम् (क्या ! निष्प्रयोजन) किं तेन कुपुत्रेण यः पितरौ न सेवते ।

इसी अर्थ के प्रयोजनम् और अर्थः के साथ भी तृतीया आती है ।

अलम् (बस) के साथ तृतीया आती है । अलं बहुभिः प्रलापैः ।

कृतम् भी इसी अर्थ में आता है ।

इनके साथ चतुर्थी का प्रयोग होता है—

नमः (नमस्कार)—नमः शिवाय ।

स्वाहा (बलिदान)--अग्नये स्वाहा ।

अलम् (पर्याप्त)--अलं कृष्णः कंसाय ।

इनके साथ पंचमी प्रयुक्त होती है—

आरात् (दूर, पास)--आरात् ग्रामात् कूपः ।

प्रभृति (लेकर, आरंभ करके)--शैशवात् प्रभृति मया सुखं न प्राप्तम् ।

आरभ्य भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

वहिः (बाहिर) ग्रामाद् वहिः सुरम्यं देवायतनम् ।

परम् (बाद) अद्यदिनात् परं न मया अत्र एयेयम् ।

अनन्तरम् भी इसी अर्थ में आता है ।

क्लिष्ट-शब्दार्थाः

कवि-चातुर्यम्—१

कविवत्सलम्—कवियों के प्रिय
प्रविविक्षुः—प्रवेश चाहने वाले
दौवारिकेण—द्वाररक्षक से
न्यरुध्यत—रोका गया
सप्रश्रयम्—सविनय
अनुनीयमानः—प्रार्थना किया हुआ

दीयेत—दिया जाय
अकिञ्चनः—जिसके पास कुछ न हो, अत्यन्त निर्धन
अभ्यनुज्ञाम्—अनुज्ञा, इजाजत
वारणम्—हाथी
अभिलषितम्—इच्छा

कवि-चातुर्यम्—२

विधेहि—कीजिये
हिरण्यम्—सुवर्ण
अभिप्रेतम्—इष्ट, इच्छित
वेत्रहस्तम्—हाथ में डंडा लिए (वेत्रः हस्ते यस्य, सः, तम्)

सम्भावनायाः—सत्कार के
अंशहरौ—हिस्सेदार
पात्यन्ताम्—गिराइये, लगाइये
प्रस्थापयामास—विदा किया

करगरा-कथा—१

करगरा—करे गरं यस्या, सा

यथार्थनाम्नी—गुणों के अनुसार

नाम वाली
अटव्याम्—जंगल में
उद्वेगात्—भय से
विधेहि—करो
ग्रहीष्ये—पकड़ूंगा, चिमटूंगा
मान्त्रिकैः—मन्त्र जानने वालों से
नीरुजा—रोगरहित, स्वस्थ
मन्त्र-विधि-निपुणता-व्याजः—
मन्त्रविधि के जानने का बहाना
आविष्टा—पकड़ी हुई
घोषणा—मुनादी, डुग्गी

करगरा-कथा—२

प्रस्थापयामास—भेजा (प्र+स्था
+लिट्)
उपचारे—चिकित्सा में
अभिहितम्—कहा
मृषावाचः—असत्य बोलने वाले
(प्रथ० बहु०)
पितृष्वसा—पिता की बहिन
(पितुः स्वसा, बुआ)
जीवितशेषा—मृतप्राय
भार्यानुरोधतः—स्त्री के आग्रह से
प्रतिपन्नम्—स्वीकार किया था
तन्त्रम्—वशीकरण विद्या
कर्णोपान्ते—कान के पास
पृष्ठलग्ना—पीछे लगी हुई, पीछा
करती हुई

भोजराजस्य सिंहासनोद्धार-कथा—१

कृष्ट्वा—जोत कर
अपवत्—बोया
समवेतः—युक्त (सम्+अव+इ
+क्तः)
मञ्चोपरि—मचान पर
प्रस्तावः—प्रसंग, अवसर
अवरुह्य—उतर कर
भणति—बोलता है
प्रतिकारार्थम्—उपाय के लिए
ब्रह्मस्वम्—ब्राह्मण का धन
यावनालक-दण्डान्—मक्के के
पौधों को
उर्वारुकफलानि—खरबूजे, कक-
ड़ियाँ
विपर्ययः—उल्टी, विपरीत दशा

भोजराजस्य सिंहासनोद्धार-कथा—२

आर्तिः—कष्ट
परिहरणीया—दूर कर दी जानी चाहिए
निवारणीयम्—हटाना चाहिए
एवंविधाम्—इस तरह की
अवादीत्—बोला
कल्पवृक्षः—एक स्वर्गीय वृक्ष जो यथेष्ट वस्तु देता है
अवसानम्—अन्त
पुष्कलेन—बहुत
खानयितुम्—खुदवाना
पुरुषप्रमाणे—मनुष्य के समान (गहरे)
गर्ते—गढ़े के
चन्द्रकान्त-शिला—एक प्रकार का पत्थर जिससे प्राचीन उक्ति के अनुसार, चंद्रोदय पर पानी टपकने लगता है

सुमति-सचिव-कथा—१

सुत-निर्विशेषम्—पुत्र की तरह (सुतात् न विद्यते विशेषः यस्य, तत् तथा)
नक्तन्दिवम्—रात दिन
घटते—होता है
विकलयितुम्—विकृत करने को, घबराने को
प्रभवतिस्म—समर्थ था
स्फोटकः—फोड़ा
क्लिश्यमानः—दुःख पाता हुआ
विधीयते—किया जाता है
अवोचत्—बोला
क्रोध-रक्त-नयनः—क्रोध से लाल आँखों वाला (क्रोधेन रक्ते नयने यस्य, सः)
दिष्ट्या—भाग्य से
सदः—सभा
समेत्य—पहुँच कर (सम्=आ+इ+ल्यप्)
यातुकामः—जाना चाहता हुआ (यातुं कामः यस्य, सः)
अनुष्ठितवान्—किया (अनु+स्था+क्तवत्)
प्रतस्थे—चल दिया
निविड-काननाऽभ्यन्तरम्—घने जंगल के अन्दर
अलम्—बस
अवगाहिष्ये—घूमूंगा
तृष्णाव्याजम्—प्यास का बहाना

सुमति-सचिव-कथा—२

अवधार्य—निश्चय कर
आरात्—पास
झटिति=शीघ्र (अव्यय)
काश्यपेय:—कश्यपपुत्र, सूर्य
पश्चिमोन्मुख:—पश्चिम की ओर
श्वापदा:—जंगली जीव
विवरेभ्य:—बिलों से
समन्तात्—चारों ओर
निशीथ-समय:—रात का समय
वृक्षाभ्याशम्—वृक्ष के पास
उपहारीकृत्य—भेंट दे कर
आसादित:—प्राप्त किया है

सुमति-सचिव-कथा—३

पलायाञ्चक्रे—भाग गया
अन्तरेण—बिना (इसके योग में द्वितीया होती है)
कूप-सन्निधौ—कुएँ के पास
मृतकल्प:—मृतसमान
उद्धर—निकालो(उद्+हृ+लोट्)
उज्जहार—निकाला
वारश:—बारबार
अयाचत—माँगी (द्विकर्मक—तं, क्षमाम्—दो कर्म)
अनुसङ्गिन:—साथी
प्रतिनिवृत्तौ—लौट गये

समस्या-पूर्तिः

वीक्ष्य—देखकर
क्रियासिद्धि:—कार्यसिद्धि
सत्वे—बल में, वीर्य में
उपकरणे—साधन में
भूर्जवसनम्—भोजपत्र के वस्त्र
अशनम्—भोजन
पायोधिम्—समुद्र को
कराम्भोज-कुहरे—हाथों की अंजलि में
भुजगयमिता:—साँपों से बाँधे हुए
निरालम्ब:—निराश्रय
विपक्ष:—शत्रु
पौलस्त्य:—रावण (पुलस्त्यस्य अपत्यम्—पुलस्त्य+यञ्)

परीक्षिच्-चरितम्—१

षोडशवर्षदेशीय:—सोलह वर्ष का
अवधीत्—मार दिया

जघ्नुः—मारा
अन्तर्वत्नी—गर्भवती
तनयाम्—पुत्री को
उपयेमे—विवाहा
अभिससार—पीछा किया
अर्धविद्धः—आधा बींधा हुआ, घायल हुआ
प्राद्रवत्—भाग गया
पिपसार्तः—प्यासा
निमीलिताक्षम्—आँखें बंद किये हुए (निमीलिते अक्षिणी येन, सः, तम्)
विद्धः—बींधा हुआ (व्यध् + क्त)
विशुष्यत्तालवे—सूखे हुए तालु वाला (विशुष्यत् तालु यस्य सः, तस्मै)
सञ्जातकोपः—क्रोधयुक्त (सञ्जातः कोपः यस्य, सः)
धनुष्कोट्या—धनुष के कोने से
उद्धृत्य—उठा कर (उद्+हृ+ल्यप्)
अंसे—कंधे पर
समवयस्कैः—समान उम्र वाले (समं वयः येषां, तैः)
क्षत्रियापसदः—नीच क्षत्रिय

परीक्षिच्-चरितम्—२

उत्थितः—उठा हुआ (उद्+स्था+क्तः)
अज्ञासीत्—जाना
मन्वानः—मानता हुआ (मन्+आन)
आनाययामास—मँगवाया (आ+नी+णिच्+लिट्)
उपदिष्टम्—उपदेश दिया (उप+दिश्+क्त)
दष्टुम्—काटने को
निर्विषम्—विषहीन
वर्त्मनि—मार्ग में
प्रतिनिवर्तितवान्—लौटा दिया
उपायनत्वेन—भेंट के रूप में
प्राकृतरूपम्—वास्तविक रूप, असली रूप

गज-शशकानाम् —१

अनावृष्टिः—सोख, वर्षाभाव
गजकलभाः—हाथियों के बच्चे
समासादितः—पाया
भग्न-पाद-शिरोग्रीवाः—जिनके पाँव, सिर और गरदनें टूट गई थीं (भग्नाः पादाः शिरांसि ग्रीवाश्च येषाँ, ते)
जीवित-शेषाः—मृतप्राय
गज-पाद-क्षुण्ण-समावासाः—हाथियों के पाँवों से जिनके घर टूट गये थे (गजानाँ पादैः क्षुण्णाः समावासाः येषाँ ते)
उद्दिश्य—ओर (इसके साथ द्वितीया आती है)
जर्जरित-कलेवराः—घायल शरीरों वाले
रुधिर-प्लुताः—लहू से भरे हुए
समेत्य—इकट्ठे होकर
मिथः—परस्पर
जिघ्रन्—सूंघता हुआ (घ्रा + शतृ)
पितृ-पैतामहिकम्—बाप-दादा का
विभीषिका—डरावना दृश्य, डरावा
निषेधयामि—रोकता हूँ
क्षतिः—हानि
श्रद्धेयम्—विश्वसनीय

गज-शशकानाम् —२

निःस्पृहः—निष्काम, इच्छारहित
वाग्मी—बातचीत में चतुर, वाचाल
विचक्षणः—योग्य
पर-चित्तावगन्ता—दूसरे के चित्त की बात को जानने वाला
निरूपितः—निश्चित हुआ
लीलया—आराम से, निश्शंक
साम्प्रतम्—अब
दूतमुखाः—दूत जिनका मुख है, (दूतः मुखं येषाम्, ते) दूत द्वारा कार्य करने वाले
परुषाणि—कठोर
जल्पन्तः—कहते हुए
भूभृता—राजा से
अतीत-दिने—गत दिन
परिग्रहः—परिवार
हत-शेषाणाम्—मरे हुओं से बचे हुए
निभृतम्—छिप कर
व्यपदेशेन—बहाने से

सोमदत्त-चरितम् —१

अध्वानम्—मार्ग
अम्बर-मणेः—आकाश के रत्न (सूर्य) के
देवतायतनम्—देवमन्दिर

अग्रजन्मा—ब्राह्मण
भूदेव—ब्राह्मण
सौम्य—सुन्दर स्वभाव वाला
परिणेतुम्—ब्याहने को
अवधूत-प्रार्थनः—जिसने प्रार्थना का तिरस्कार किया हो (अवधूता प्रार्थना येन, सः)
साडम्बरम्—धूमधाम से
परिणेया—ब्याहनी चाहिए
कन्या-सारणे—कन्या को ले जाने में
अन्तरेव—बीच में ही
निगडित-बाहु-युगलः—जिसकी दोनों भुजायें बाँधी (जंजीरों से) हैं (निगडितं बाह्वोः युगलं यस्य, सः)

सोमदत्त-चरितम्—२

अपरेद्युः—दूसरे दिन
परिवृत्य—घेर कर
हृष्टः—प्रसन्न
परेद्युः—दूसरे दिन
रोषारुण-लोचनः—क्रोध से लाल आंखों वाला (क्रोधेन अरुणे लोचने यस्य, सः)
अभर्त्सयत्—धिक्कारा
निशम्य—सुन कर
रण-दक्षता—युद्धचातुरी
प्रहितवान्—भेजा
द्रव्यजातम्—धनसमूह, बहुत पदार्थ
उपस्थितः—हाजिर हुआ

रावणस्य रण-प्रयाणम्—१

ससम्भ्रमम्—व्याकुलता के साथ
मनुज-तापसेन—तपस्वी मनुष्य से
प्रसह्य—आक्रमण कर
समर-भीरो—युद्ध से डरने वाले
पराङ्मुखाः—विमुख
समाश्वसिहि—धीरज करो
ज्वरकृत्—तपाने वाला
कृतास्त्र—अस्त्रविद्या में निपुण
वासवजित्—इन्द्र को जीतने वाला, मेघनाद
आनत-वैरि-चक्रम्—जिसने वैरियों को झुका दिया है (आनतः वैरिणां चक्रः येन, सः)
युद्ध-शौण्ड—युद्धविद्या में कुशल

प्रापितः—प्राप्त कराया गया(प्र+आप्+णिच्—क्त)
त्रैलोक्य विजय-विफलया—त्रिलोकों के विजय का जिसे कुछ फल नहीं मिला
दशाननः—रावण, दशमुख वाला

रावणस्य रण-प्रयाणम्—२

निहित-बाणः—तीर रखे हुए (निहितः बाणः येन, सः)
हास-फंफुल्लनेत्रः—हँसी से फूले हुए नेत्रों वाला
अभिपतति—आ रहा है, धावा कर रहा है
सन्दिधक्षुः—जलाने की इच्छा वाला
कृष्टान्त्रमालालंकृतः—खिंची हुई आँतड़ियों की माला से भूषित
खड्गाशनिपातेन—तलवाररूपी बिजली गिराने से (खड्ग एव अशनिः, तस्य निपातः, तेन)
समनुज-युगलम्—मनुष्यों के जोड़े (राम-लक्ष्मण) के सहित
अनवरत-वृथा-प्रयासेन—बार-बार के व्यर्थ प्रयत्न से
स्यन्दनम्—रथ को
समावृतम्—युक्त
चापात्—धनुष से
च्युतैः—गिरे हुए, निकले हुए

दान-माहात्म्यम्

ग्रासात्—कौर से
इच्छानुरूपः—इच्छानुकूल
तिस्रः—तीन
विशिष्टेभ्यः—उत्तम पुरुषों को
आयास-शत-लब्धस्य—सैकड़ों यत्नों से प्राप्त
गरीयसः—बड़े
दारिद्र्य-संभवम्—निर्धनता के कारण उत्पन्न (दारिद्र्यात् संभवः यस्य, तत्)
तडागोदर-संस्थानाम्—तालाब के भीतर स्थित
अम्भसाम्—जल का
पयोदानाम्—बादलों की
पयोधीनाम्—समुद्रों का
मेदिनीम्—पृथ्वी को
सुकृतिभिः—अच्छे कर्मों वालों से
घर्षन्ति—घिसती हैं, मलती हैं

दुर्जन-निन्दा

नलिका-गतम्—नली में रखी हुई
आदत्ते—ग्रहण करता है
विरागी—विरक्त, स्वीकार न करने वाला
क्रमेलक—ऊँट
कण्टकौघम्—काँटों के समूह को
वृथा-ज्वलित-कोपाग्नेः—जिसके क्रोध की आग वृथा जली है—अर्थात् जिसके क्रोध का कुछ फल नहीं। (वृथा ज्वलितः कोप एव अग्निः यस्य, सः, तस्य)
सर्षपमात्राणि—सरसों के दाने के तुल्य
प्रतिक्रिया—उपाय
श्लेष्मणः—कफ का
कटुकेन—कडवी वस्तु से
क्षारः—खारा समुद्र
मधुरायते—मीठा होता है (मधुर-नामधातु)
अयःपिण्डे—लोहे के पिंड पर
तोय-कणाः—जलकण
टङ्कैः—टांकीसे, छेनी से
पयोधर-पदम—बादल का स्थान
ज्वलनस्य—अग्नि का
कलुष-प्रकृतिः-दुष्ट स्वभाव वाला

कूट-पद्यानि

त्वत्तः—तुझसे
दास्यसि—दासी+असि=नौकरानी है
हेम-रेखाङ्कम्—सुवर्णमय
मुञ्चति—छोड़ते हुए (सप्त० एक० मुञ्चत्)
मध्ये रीतिधरं शरम—मध्य में 'री' युक्त 'शर' को अर्थात् 'शर' के मध्य में 'री' रखने से 'शरीर' शब्द होता है (शरीर को)
विषम्—'ष' से रहित
कृष्णाजिनम्—यदि 'कृष्णाजिनम्' शब्द को 'क' दो 'न' और 'ष' से रहित कर दें तो उसका रूप होगा 'ऋ+आ+जि+अम्।' सन्धि करने पर यह 'राज्यम्' बन जायगा।

प्रहेलिका:

पन्नग:—साँप
कृष्णानना—काले मुँह वाली (कृष्णम् आननं यस्याः, सा)
मार्जारी—बिल्ली
शूलपाणि:—महादेव (शूलं पाणौ यस्य, सः)
त्वग्वस्त्र-धारी—त्वचा (भोज-पत्र)के वस्त्र धारण करने वाला
बिभ्रत्—धारण करता हुआ
अपद:—पादरहित
साक्षार:—अक्षरों के साथ, पक्ष में, पढ़ा हुआ
स्फुटवक्ता—स्पष्ट बातें बताने वाला

इन्द्रिय-संयम:

अलम्—पर्याप्त
विनाश-प्रतिपत्तये—नाश की प्राप्ति के लिए
शुचि-शष्पांकुराहार:—निर्मल घास खाने वाला
विदूर-क्रमण-क्षम:—दूर-दूर उछलने कूदने में समर्थ
मृगयते—ढूंढ़ता है
करिणी—हथिनी
आलानम् याति—खूंटे से बाँधा जाता है
वारण:—हाथी
स्निग्ध-दीप-शिखालोक-विलोभित-विलोचन:—तैलयुक्त दिये की लाट के प्रकाश से लुब्ध आँखों वाला (स्निग्धस्य दीपस्य शिखाया: आलोकेन विलोभिते लोचने यस्य, सः)
ऋच्छति—प्राप्त होता है
सामिषम्—भोग्य वस्तु सहित
दानासव-पिपासया—(हाथी के) दानमद को पीने की इच्छा से
गज-कर्ण-झणज्झणाम्—हाथी के कान की झणझण की आवाज़ को
विषसन्निभा:—विषतुल्य
क्षेमी—सकुशल, सुखी
प्रवृत्त-दान:—जिसका मद बह रहा है
मृदुसञ्चरत्कर:—धीरे-धीरे जिसकी सूंड हिलती है (मृदु यथा स्यात् तथा सञ्चरन् कर: यस्य, सः)

भरतस्य शपथाः

अभ्यकुत्सयत्—कोसा, धिक्कारा
जातु—कभी (अव्यय)
विवासनम्—निर्वासन, बहिष्कार
क्रोशतः—चिल्लाते हुए, रोते हुए (क्रोश-ष० एक०)
अकल्मषम्—निर्दोष
कृत-शास्त्रानुगा—पढ़े हुए शास्त्रों पर अनुष्ठान करने वाली
बलि-षड्-भागम्—उपज का छठा भाग
उद्धृत्य—ले कर
समुपोढे—बढ़े हुए
विप्रलम्भेन—धोखे से

बुद्ध-वैराग्यम—१

मृदु-शाद्वलानि—मृदु तथा हरे घास वाले मैदान से युक्त
पुंस्कोकिलोन्नादित-पादपानि—जिसके वृक्ष कोयलों के कूजन से प्रतिध्वनित हो रहे हैं (पुंस्कोकिलाभिः उन्नादिताः पादपाः येषाम्, तानि)
मनोज्ञभावम्—सौन्दर्य
अवरुद्धः—रुका हुआ
विहारयात्राम्—घूमना-फिरना
निवर्तयामास—रोका, हटाया
संविग्नचेताः—व्याकुल चित्त वाला, उदास
प्रत्यङ्ग-हीनान्—अपाहज
विकलेन्द्रियान्—विकृत इन्द्रियों वाले
समुत्सार्य—हटा कर
साम्ना—नरमी से (सामन्-तृ एक०)
उपाघ्राय—चुम्बन कर
जाम्बूनद-भाण्ड-भृद्भिः—सुवर्ण पात्रों को उठाये हुए
निभृतैः—स्थिर, अचंचल
अक्लीव-विद्युच्छुचि-रश्मि-धारम्—पक्की तथा बिजली के समान उत्तम लगाम को धारण करने वाले
स्यन्दनम्—रथ
जीर्णम्—वृद्ध
सञ्चोदनार्थम्—प्रेरणा के लिए

बुद्ध-वैराग्यम्—२

संग्राहकम्—सारथि को
आगतास्थः—करुणायुक्त
निविष्ट-दृष्टिः—आँखें गाड़े हुए (निविष्टा दृष्टिः यस्य, सः)
अभ्युपेतः—आया है
यष्टि-विषक्त-हस्तः—हाथ में लाठी थामे हुए (यष्टौ विषक्तः हस्तः यस्य, सः)
भ्रू-संवृताक्षः—भवों से छिपी हुई आँखों वाले (भ्रूभ्यां संवृते अक्षिणी यस्य, सः)
शिथिलानताङ्गः—दुबले और झुके हुए अङ्गों वाला
यदृच्छया—अचानक
रथ-प्रणेता—रथ हाँकने वाला, सारथी
भविता—होगा (भू+लुट्)
वयः-प्रकर्षात्—अधिक उम्र होने से
संविग्नम्—चिन्तायुक्त
सनिर्विशेषम्—भेदरहित
रतिः—प्रीति
नियन्ता—सारथि

भर्तृहरेः पद्यानि

विरमन्ति—रुक जाते हैं (वि+रम्+अन्ति—परस्मैपद)
प्रतिहन्यमानाः—प्रहार किये हुए, रोके हुए
अम्भोदाः—मेघ
पिशुनता—सूचक होना
सौजन्यम्—सुजनता, सज्जनता
मण्डनैः—भूषणों से
संतप्तायसि—तपे हुए लोहे पर
नलिनी-पत्र-स्थितम्—कमल-पत्र पर पड़े हुए
स्वात्याम्—स्वाति (नक्षत्र) में
संसर्गतः—सहवास से
अम्बुभिः—जल से
अनुद्धतः—विनम्र, गर्वरहित
पुण्य-पीयूष-पूर्णाः—पवित्र अमृत से भरे हुए
पर्वतीकृत्य—पर्वत समान बढ़ा कर
विकसन्तः—खिलते हुए, प्रसन्न होते हुए

वल्कलैः—भोजपत्र से
दुकूलैः—ओढ़ने के वस्त्र, दुपट्टों से
निर्विशेषः—समान, एक जैसा
अप्रतिहता—अकुण्ठित

सन्दीप्ते—जल जाने पर
नृणाम्—मनुष्यों का
वारि-तरङ्ग-चञ्चलतरे—जल (नदी) की लहर की तरह चंचल

1/12/-